WWW.GRADESETTER.COM

भारतीय इतिहास

1. भारतीय इतिहास के स्रोत

भारतीय इतिहास की जानकारी के लिए हमें देशी एवं बाह्य विवरणों तथा पुरातात्विक साक्ष्यों से पर्याप्त जानकारी मिलती है। इतिहास लेखन के समय स्रोतों का होना अत्यावश्यक होता है। स्रोतों के अभाव में इतिहास लेखन की प्रामाणिकता पुष्ट नहीं होती। स्रोत मूलतः दो रूपों में प्राप्त होते हैं—साहित्यिक स्रोत एवं पुरातात्विक स्रोत। विभिन्न कालखण्डों में विभिन्न देशों का इतिहास बाह्य सभ्यताओं से भी प्रभावित होता है—व्यापारिक एवं राजनीतिक/सांस्कृतिक संबंध एक-दूसरे देश को काफी हद तक प्रभावित करते हैं। इतिहास लेखन के समय दूसरे देशों के विवरणों का भी पर्याप्त महत्त्व होता है। अतः भारतीय इतिहास के संदर्भ में स्रोतों को तीन वर्गों में विभक्त कर प्रस्तुत किया जा सकता है—साहित्यिक स्रोत, पुरातात्विक स्रोत एवं विदेशी विवरण। सैन्धव सभ्यता और उसके पूर्व के इतिहास के लिए हमें पूर्ण रूप से पुरातात्विक स्रोतों पर निर्भर रहना पड़ता है। उसके बाद वैदिक काल से पूर्व वैदिक काल के लिए अभी तक मात्र साहित्यिक स्रोत ही उपलब्ध हैं। उत्तर वैदिक काल से साहित्यिक स्रोतों के साथ-साथ पुरातात्विक स्रोत भी मिलने लगते हैं, परंतु भारत का व्यवस्थित इतिहास मौर्यकाल से ही शुरू हो पाता है, क्योंकि पहली बार इस काल के संबंध में हमें पुरातात्विक स्रोत, साहित्यिक स्रोत और विदेशी विवरण प्राप्त होते हैं। सैंधव लिपि को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है और इस कारण से प्राचीन भारत का इतिहास अभी भी अधूरा है। इस लिपि को पढ़ लिए जाने के बाद अनेक तथ्यों के उजागर होने का अनुमान है।

प्राचीन भारतीय इतिहास के संबंध में पर्याप्त स्रोत प्राप्त नहीं होते हैं। वस्तुतः, भारत का प्राचीन इतिहास स्रोतों की अपर्याप्तता के कारण अपूर्ण है। अनेक कारणों से प्राचीन भारत के इतिहास के संबंध में स्रोतों की अपर्याप्तता है और उनमें कुछ प्रमुख हैं—

ऐतिहासिक बोध का अभाव

प्राचीन भारत में रचनाकारों, राजनीतिज्ञों अथवा जनसाधारण में ऐतिहासिक बोध का सर्वथा अभाव था। उन्होंने अपने शासकों के जीवन-चरित्र लिखने अथवा राजनीतिक घटनाओं का वर्णन करने में कभी विशेष रुचि नहीं दिखाई। यदि साहित्यिक कृतियों का अध्ययन सूक्ष्मतापूर्वक किया जाए, तो यह ज्ञात होता है कि कल्हणकृत 'राजतरंगिणी' पूर्णतः ऐतिहासिक सोच पर आधारित पहला भारतीय ग्रंथ है। इसके पूर्व शासकों अथवा राज्यों के संबंध में जानकारी मिलती है तो कथाओं के रूप में न कि इतिहास के रूप में।

धर्म एवं दर्शन के प्रति झुकाव

भारत में निवास करने वाले सर्वाधिक प्राचीनतम हिंदू हैं और यह एकमात्र ऐसी प्रजाति है, जो जन्मना और स्वाभाविक रूप से धर्म एवं दर्शन में अधिक रुचि रखती है। हिन्दू विद्वानों ने राजनीतिक एवं ऐतिहासिक घटनाओं की अपेक्षा धार्मिक एवं दार्शनिक ग्रंथों की रचना पर अपना अधिकाधिक ध्यान केन्द्रित किया। इससे भारत में सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के संबंध में कालक्रमिक घटनाओं की जानकारी का सर्वथा अभाव है।

जाति प्रथा का अस्तित्व में होना

भारत में जाति-प्रथा प्राचीन काल से ही विद्यमान है। भारतीय समाज मुख्य रूप से चार जातियों में विभक्त था—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। इनमें से सर्वश्रेष्ठ मानी जाने वाली ब्राह्मण जाति का संबंध अध्ययन-अध्यापन तथा धार्मिक कार्यों से था, जबकि क्षत्रियों का संबंध राजकीय कार्यों से था। ब्राह्मण और क्षत्रिय समाज में श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए संघर्षरत रहते थे और इस विद्वेष के कारण ब्राह्मण साहित्य-सृजन के समय शासकों के संबंध में लिखकर उनके महत्त्व को बढ़ाना नहीं चाहते थे। ऐसी स्थिति में धार्मिक एवं आध्यात्मिक साहित्य का तो विपुल सृजन हुआ, परंतु ऐतिहासिक ग्रंथों का अभाव बना रहा।

एकता का अभाव

प्राचीन काल में भारत में एकता का सर्वथा अभाव था। चंद्रगुप्त मौर्य के पूर्व तक भारत अनेक छोटे-छोटे टुकड़ों में बंटा था, इसलिए समन्वित रूप से उनका इतिहास लिख पाना असंभव था। मौर्य साम्राज्य से लेकर गुप्त साम्राज्य के अस्तित्व में रहने तक भारत में राजनीतिक एकता रही, इसलिए उस काल के इतिहास के संबंध में कुछ महत्त्वपूर्ण जानकारी मिल भी जाती है, परंतु गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद सम्पूर्ण भारत फिर से छोटे-छोटे राज्यों में बंट गया और राजनीतिक एकता का अभाव हो गया। राजनीतिक एकता के अभाव में ऐतिहासिक साहित्य का सृजन नहीं हो सका। यदि ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन ग्रंथों में किया भी गया, तो वे सर्वथा यथार्थ पर आधारित नहीं थीं।

इतिहास के संबंध में विशिष्ट दृष्टिकोण

कुछ विद्वान ऐसा मानते हैं कि भारतीय रचनाकारों में ऐतिहासिक बोध का अभाव नहीं था, बल्कि इतिहास के संबंध में उनका अपना पृथक् दृष्टिकोण था। हिन्दुओं का इतिहास के संबंध में बहुत ही व्यापक दृष्टिकोण था। हिन्दू इतिहासकार (रचनाकार) अपने समय के शासकों के जीवन एवं उपलब्धियों अथवा उस काल की घटनाओं का उल्लेख करना मात्र ही इतिहास नहीं समझते थे। हिंदुओं की समझ से इतिहास सम्पूर्ण मानव प्रजाति के युग-युगान्तरों का इतिवृत्त है। उनकी इस सोच के कारण ही वास्तविक इतिहास की रचना नहीं की जा सकी।

ऐतिहासिक ग्रंथों का विनष्ट हो जाना

प्राचीन काल में भारत में लगभग सभी राजाओं के दरबार में इतिहासकार विद्यमान रहते थे। ये इतिहासकार अपने संरक्षकों की जीवनी तथा उस काल की घटनाओं के संबंध में लिखते थे। ऐसा माना जाता है कि जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक आपदाओं तथा राजनीतिक क्रांतियों के कारण बहुत से ग्रंथ विनष्ट हो गए अथवा विलुप्त हो गए। इससे प्राचीन भारत के इतिहास के संबंध में बहुत-सी महत्त्वपूर्ण जानकारियां नहीं मिलती हैं।

अनेक पृथक् संवतों का अस्तित्व में होना

प्राचीन भारत में समय-समय पर अनेक वंशों ने शासन किया। इन वंशों के प्रभावी शासकों ने अलग-अलग अनेक संवतों की शुरुआत कर दी। नए संवतों के अस्तित्व में आ जाने से वर्षों की गणना अलग-अलग होने लगती थी। कनिंघम के अनुसार प्राचीन भारत में कम-से-कम 27 नए संवत् शुरू किए गए। इससे इतिहास को क्रमबद्ध करने में अनेक कठिनाइयां सामने आती हैं।

साहित्यिक स्रोत

प्राचीन भारत के संदर्भ में साहित्यिक स्रोत तीन रूपों में प्राप्त ह हैं—धार्मिक साहित्य, ऐतिहासिक साहित्य और अर्द्ध-ऐतिहासिक साहि

धार्मिक साहित्य

स्रोतों के रूप में धार्मिक साहित्य को भी तीन उपवर्गों में विभाजि जाता है—हिन्दू धर्म से संबद्ध साहित्य, बौद्ध साहित्य एवं जैन

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

हिंदू साहित्यः हिन्दुओं के प्राचीन धार्मिक ग्रंथ प्राचीन भारतीय इतिहास की जानकारी के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। इन ग्रंथों में सर्वाधिक प्राचीन ऋग्वेद है। ऋग्वेद के पश्चात् सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद आदि विभिन्न वैदिक ग्रंथों की रचना हुई। इनसे हमें वैदिक काल के संबंध में जानकारी मिलती है। वैदिक काल के संबंध में जानकारी के लिए हमें पूर्ण रूप से इन्हीं ग्रंथों पर निर्भर होना पड़ता है। वैदिक साहित्य के बाद विभिन्न सूत्र ग्रंथ एवं स्मृति ग्रंथ प्राचीन भारतीय इतिहास की जानकारी के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। हिंदुओं के दो प्रसिद्ध प्राचीनतम महाकाव्यों— 'रामायण' तथा 'महाभारत' से भी हमें तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक-सांस्कृतिक जीवन के संबंध में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। महाकाव्यों के बाद पुराणों का स्थान आता है। पुराणों की संख्या 18 बतायी जाती है (अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्)। इनमें से मात्र ब्रह्म, वायु, मत्स्य, विष्णु भविष्य, भागवत, गरुड, अग्नि, मारकण्डेय आदि पुराण ही ऐतिहासिक महत्त्व के हैं। पुराणों से हमें शैशुनाग, नन्द, मौर्य, शुंग, कण्व, सातवाहन तथा गुप्त आदि प्राचीन भारत के राजवंशों के संबंध में महत्त्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त होती हैं। हिंदुओं के धार्मिक ग्रंथों में पुराण ही इतिहास के निकट हैं। मौर्यों के पूर्ववर्ती शासकों की जानकारी के लिए तो हमें पूर्ण रूप से पुराणों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। पुराणों से शक, यवन, हूण आदि विदेशियों के संबंध में महत्त्वपूर्ण जानकारियां मिलती हैं।

बौद्ध साहित्यः प्राचीन भारतीय इतिहास की जानकारी के लिए हमें
बौद्धों के धार्मिक ग्रंथों पर विशेष रूप से निर्भर होना पड़ता है। बौद्धों के
र्वाधिक प्राचीन धार्मिक ग्रंथ त्रिपिटक हैं—सुत्तपिटक, विनयपिटक और
भिधम्मपिटक ये सभी ग्रंथ पालि भाषा में रचित हैं। इन ग्रंथों से हमें बौद्ध
के आरंभिक स्वरूप के साथ-साथ तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक,
क तथा सांस्कृतिक जीवन के संबंध में महत्त्वपूर्ण जानकारियां मिलती
द्धों के धार्मिक ग्रंथों में 'महावंश' और 'दीपवंश' का भी अन्यतम स्थान
ग्रंथों की रचना श्रीलंका में पालि भाषा में हुई। इन ग्रंथों से श्रीलंका
वंशों (विशेषकर बौद्ध धर्म के संरक्षक) के साथ-साथ तत्कालीन
राजनीति, समाज, अर्थ तथा धर्म के संबंध में भी महत्त्वपूर्ण
यां मिलती है।
टकों तथा महावंश और दीपवंश को दक्षिणी बौद्धमत का ग्रंथ माना
छ ग्रंथ ऐसे हैं, जिन्हें उत्तरी बौद्ध मत का प्रतिनिधि ग्रंथ माना
री भारत में रचित ग्रंथों में प्रथम महत्वपूर्ण ग्रंथ 'ललितविस्तार'
की दूसरी अथवा तीसरी सदी में नेपाल में हुई। इस ग्रंथ
त भाषा में हुई। इस ग्रंथ में बुद्ध के जीवन-चरित्र के साथ-साथ
य भी प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त कनिष्क के शासनकाल
रा 'बुद्धचरित' की रचना की गई तथा वसुमित्र द्वारा
रचना की गई। 'जातक' भी बौद्धों के प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। जातकों
। जातकों में गौतम बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाओं का वर्णन
त जातकों से हमें तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित
रीतियों के संबंध में जानकारी मिलती है।
ाचीन भारत में आर्यों की कर्मकाण्डी व्यवस्था के विरुद्ध
ए हिन्दू धर्म के समानांतर दो नए दीर्घकालिक धर्मों
हैं—बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म। बौद्धों के धार्मिक ग्रंथों
ी चर्चा पूर्व में की गई है। बौद्धों के समान ही जैनों
चीन भारतीय इतिहास के संबंध में जानकारी के
के धार्मिक ग्रंथों में सर्वाधिक प्राचीन 12 अंग हैं।
हावीर तथा जैन धर्म के साथ-साथ तत्कालीन
क स्थिति के संबंध में भी महत्त्वपूर्ण जानकारियां
गों एवं पूर्वों के अतिरिक्त विभिन्न सूत्र ग्रंथ (जैनों
को) भी प्राचीन भारतीय इतिहास के संब
करते हैं। सूत्र ग्रंथों में 'कल्प सूत्र', 'भगवती सूत्र',
मुख्य हैं। जैन ग्रंथों में ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपू
'परिशिष्ट पर्व' है। इस ग्रंथ की रचना 12वीं शताब्दी में हुई थी।

ऐतिहासिक साहित्य

प्राचीन भारत में गुप्तों के बाद कुछ ऐतिहासिक ग्रंथों की भी रचनाएं होने लगीं। ऐतिहासिक महत्त्व के प्रथम ग्रंथ की रचना हर्ष के दरबारी बाण ने 'हर्षचरित' के रूप में की। इस ग्रंथ में हर्ष के जीवन के साथ-साथ उसके पूर्ववर्ती तथा उसके शासनकाल के भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक धार्मिक तथा सांस्कृतिक स्थितियों की भी जानकारी मिलती है। प्राचीन भारत के संबंध में कुछ महत्त्वपूर्ण जानकारी हमें 'पृथ्वीराज रासो' से भी मिलती है। इसकी रचना पृथ्वीराज चौहान के राजकवि चंदबरदाई ने की थी। ऐतिहासिक ग्रंथों में सर्वाधिक महत्त्व 'राजतरंगिणी' को प्रदान किया जाता है। इस ग्रंथ की रचना 12वीं शताब्दी में कश्मीर के प्रसिद्ध विद्वान् कल्हण ने की थी। इसकी भाषा संस्कृत है। वस्तुतः, ऐतिहासिकता की सम्पूर्ण झलक पहली बार इसी ग्रंथ में मिलती है। इस ग्रंथ में कश्मीर के शासकों का इतिहास लिखित है। कश्मीर के साथ-साथ तत्कालीन शेष भारत की राजनीतिक स्थिति का वर्णन भी इस ग्रंथ में किया गया है।

सौराष्ट्र क्षेत्र (गुजरात) में भी कुछ महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना की गई। इन ग्रंथों में प्रमुख हैं—'रसमाला', 'कीर्त्तिकौमुदी', 'प्रबंध चिंतामणि' (मेरुतुंग), 'प्रबंध कोष' (राजशेखर) आदि। प्राचीन भारत के संबंध में जिन अन्य ऐतिहासिक ग्रंथों से जानकारी मिलती है, वे हैं—गौडवाहो (वाक्पति), 'कुमारपालचरित' (हेमचंद्र), 'विक्रमांकदेव चरित' (बिल्हण), 'कुमारपालचरित' (जयसिंह), 'नवसाहसांकचरित' (पदमगुप्त), 'भोजप्रबंध' (बल्लाल), 'रामचरित' (संध्याकर नन्दी) आदि। दक्षिण भारत का इतिहास जानने के लिए हमें संगम साहित्य और परवर्ती शासकों के दरबारियों की रचनाओं पर निर्भर होना पड़ता है।

अर्द्ध-ऐतिहासिक साहित्य

भारत में प्राचीन काल से ही अनेक ऐसे ग्रंथों की रचना होती आयी है, जिनका पूर्ण रूप से तो नहीं, किंतु आंशिक रूप से निश्चित तौर पर ऐतिहासिक महत्त्व है। स्रोत की दृष्टि से ऐसे ग्रंथों को हम अर्द्ध ऐतिहासिक ग्रंथ की श्रेणी में रखते हैं। ऐसे ग्रंथों की शुरुआत भास की रचनाओं से होती है। भास को संस्कृत का प्रथम नाटककार माना जाता है और उन्होंने 'स्वप्नवासवदत्ता' और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण'-जैसे कालजयी नाटकों की रचना की। उनके इन नाटकों से वत्सराज उदयन तथा उनके समकालीन राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक स्थितियों की जानकारी मिलती है। भास के बाद विशाखदत्त और कालिदास जैसे नाटककारों ने भी अनेक नाटकों की रचना की। विशाखदत्त ने 'मुद्राराक्षस' की रचना की, जो मौर्यकाल की आरंभिक अवस्था के संबंध में अनेक महत्त्वपूर्ण जानकारियां प्रदान करता है। कालिदास ने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में गुप्तकालीन परिस्थितियों का उल्लेख किया है, जबकि उन्हीं के एक अन्य नाटक 'मालविकाग्निमित्रम्' से हमें मौर्यों के उत्तराधिकारी शुंगों के संबंध में अनेक महत्त्वपूर्ण जानकारियां मिलती हैं। हर्ष ने तीन नाटकों की रचना की थी— 'रत्नावली', 'प्रियदर्शिका' और 'नागानन्द'। इन नाटकों से हर्षकालीन परिस्थितियों की जानकारी मिलती है। इसके अतिरिक्त दण्डी के 'दशकुमार चरित' और 'अवंतिसुंदरी' नाटकों से भी हमें महत्त्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त होती हैं।

चंद्रगुप्त मौर्य के महामात्य (प्रधानमंत्री) कौटिल्य (चाणक्य अथ
विष्णुगुप्त) ने राजनीति शास्त्र पर एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' की रच
की। इस ग्रंथ से हमें मौर्यों की प्रशासनिक व्यवस्था के संबंध में महत्त्व
जानकारी मिलती है। पतंजलि के 'महाभाष्य' से भी प्राचीन भारत के स
में अनेक प्रकार की महत्त्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त होती हैं।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

पुरातात्विक स्रोत

प्राचीन भारत का इतिहास जानने में पुरातात्विक स्रोतों की अन्यतम भूमिका है। प्राचीन भारत के विभिन्न शिलालेखों, ताम्रपत्रों, राजमुद्राओं, शस्त्रास्त्रों, खण्डहरों, मृद्‌भाण्डों एवं अन्य धात्विक भाण्डों आदि की उपलब्धता नहीं होती, तो निश्चित रूप से भारत का क्रमिक और प्रामाणिक इतिहास लेखा जाना कठिन ही नहीं असंभव हो जाता। पुरातात्विक स्रोतों का अध्ययन तीन पृथक् खण्डों में किया जाता है—अभिलेख, मुद्रायें तथा स्मारक।

अभिलेख

प्राचीन काल में भारत में स्तम्भों, शिलाओं और गुफाओं के साथ-साथ गुफाओं, मूर्तियों, धातु-पत्रों, आदि पर भी लेख उत्कीर्ण करवाए जाते थे। अभिलेखों की दृष्टि से मौर्य सम्राट अशोक का शासनकाल सर्वाधिक उल्लेखनीय है। अशोक के विभिन्न प्रकार के अभिलेख उसके साम्राज्य के विभिन्न भागों से प्राप्त हुए हैं। इन अभिलेखों से अशोक के जीवन, साम्राज्य विस्तार, धर्म, शासन प्रबंध, प्रजा हितकारी कार्यों आदि के संबंध में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। वस्तुतः, अशोक ने राजकीय अभिलेखों को खुदवाने की परम्परा प्रारम्भ कर भारतीय इतिहास को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अशोक के अभिलेखों के अतिरिक्त कलिंगराज खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख, समुद्रगुप्त का प्रयाग प्रशस्ति अभिलेख, चंद्रगुप्त द्वितीय का महरौली स्तम्भलेख, स्कंदगुप्त का भितरी स्तम्भ लेख तथा पुष्यमित्र शुंग, रुद्रदामन, पुलकेशिन द्वितीय, विजयसेन, भोज आदि शासकों के अभिलेख से भी भारतीय इतिहास के निर्माण में बहुत सहायता मिली है। इस संदर्भ में ज्ञातव्य है कि भारतीय इतिहास के अध्ययन क्रम में अशोक के अभिलेख प्रथम पठित अभिलेख हैं और रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख में पहली बार संस्कृत का प्रयोग हुआ है। इसके पूर्व के अधिकांश लेख प्राकृत और पालि में हैं, जबकि कुछ लेख यूनानी एवं आरमेइक में भी हैं। ऊपर उल्लिखित अभिलेखों को राजकीय या सरकारी अभिलेख की भी संज्ञा दी जाती है। कुछ ऐसे गैर-राजकीय अभिलेख भी हैं, जिनका पर्याप्त ऐतिहासिक महत्त्व है। गैर-राजकीय अभिलेख अधिकांशतः मंदिरों की दीवारों एवं मूर्तियों पर अंकित हैं। इनके अतिरिक्त कुछ लेख भारत के पड़ोसी देशों से भी प्राप्त हुए हैं, जिनसे तत्कालीन अंतरराष्ट्रीय संबंधों के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

मुद्राएं

प्राचीन भारतीय इतिहास की जानकारी के संबंध में मुद्राएं भी महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। उत्खनन के दौरान प्राचीन भारत के लगभग सभी कालखण्डों से संबद्ध मुद्राएं प्राप्त हुई हैं। मुद्रायें सोना, चांदी, तांबा, कांस्य, मिश्र धातु तथा पत्थरों की बनी हैं। राजाओं द्वारा जारी मुद्राओं पर राजाओं के नाम, उनकी चित्राकृति, तिथियां, पशु-पक्षियों, देवताओं और कुछ पर राजाओं की उपाधियां अंकित हैं। मुद्राओं से हमें वंशावली, शासन-प्रबंध तथा राजनीतिक व धार्मिक विचारों को जानने में अनेक प्रकार से सहायता मिलती है। भारत में कुछ शासक वंश तो ऐसे हैं, जिनकी जानकारी के लिए हमें पूर्ण रूप से मुद्राओं पर ही निर्भर होना पड़ता है। हिन्द-यूनानी शासकों ने भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में लगभग तीन सदियों तक शासन किया, परंतु उनकी जानकारी हमें केवल मुद्राओं से प्राप्त होती है। सातवाहन शासकों के संबंध में भी अधिकांश जानकारी सिक्कों से ही मिलती है। सातवाहनों ने शीशे के सिक्के को प्रचलित किया था। शकों और कुषाणों के संबंध में जानकारी की प्राप्ति के लिए भी मुख्य रूप से सिक्कों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। प्राचीन भारत में ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वाधिक सिक्के (विशेषकर स्वर्ण) गुप्तों ने ही जारी किए। इन सिक्कों से गुप्त शासकों के जीवन-चरित, उनके धर्म तथा सफलताओं के संबंध में अनेक महत्त्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त होती हैं। गुप्त काल के अधिकांश सिक्कों पर विष्णु एवं गरुड़ के चित्रों के अंकित होने से यह निर्धारित किया जाता है कि गुप्त शासक विष्णु के उपासक थे। सिक्कों के आधार पर तत्कालीन समाज की आर्थिक एवं कलात्मक समृद्धि की भी जानकारी प्राप्त होती है। जिस शासक के शासनकाल में जितनी बड़ी मात्रा में सिक्के जारी किए गए, उसे आर्थिक दृष्टि से उतना ही अधिक समृद्ध माना गया। गुप्तों के शासनकाल में सर्वाधिक स्वर्ण सिक्के जारी किए गए और स्वर्ण की गुणवत्ता भी बहुत उच्चकोटि की थी। इसलिए गुप्तकाल को आर्थिक दृष्टि से सर्वाधिक समृद्ध माना जाता है। उसके बाद से जैसे-जैसे आर्थिक पतन होता गया, वैसे-वैसे सिक्कों के लिए निम्न कोटि की धातुओं को उपयोग में लाया जाने लगा।

स्मारक

प्राचीन भारत के इतिहास को जानने में खुदाइयों में प्राप्त स्मारकों के अवशेषों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। हमारी पहली विकसित सभ्यता सैन्धव सभ्यता के संबंध में तो जानकारी का एकमात्र स्रोत खुदाइयों में प्राप्त नगरावशेष ही हैं। मौर्यकाल के संबंध में भी हमें अनेक प्रकार की जानकारियां भग्नावशेषों से ही प्राप्त होती हैं। पाटलिपुत्र के राजप्रासाद, विभिन्न स्थानों पर निर्मित स्तूप, गुफा, चैत्य एवं विहार इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। स्मारकों के रूप में अशोक के समय के सांची तथा भरहुत के स्तूप, गुप्तकाल के देवगढ़ तथा भितरीगांव और तिगवां के मंदिर भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कनिष्क के शासन काल की तक्षशिला तथा उत्तरपश्चिमी प्रदेशों से प्राप्त मूर्तियां गांधार कला के सौंदर्य के साथ-साथ कला पर यूनानी प्रभाव, कुषाण शासक की बौद्धों के महायान शाखा में आस्था आदि को भी प्रकट करती हैं। गुप्तकाल की वैष्णव, बौद्ध, जैन और शैव मूर्तियों से गुप्त शासकों की धार्मिक सहिष्णुता की जानकारी मिलती है। विदेशों में प्राप्त अनेक स्मारक भी भारत के प्राचीन इतिहास को समझने में सहायक हुए हैं। इनमें जावा में स्थित बोरोबुदूर मंदिर तथा प्रंबनम मंदिर, कंबोडिया में अंगकोरवाट मंदिर, बोर्नियो में मुकरकमन नामक स्थान पर मिली विष्णु की प्रसिद्ध स्वर्ण मूर्ति, मलाया में शिव, पार्वती, गणेश आदि की मूर्तियां आदि प्रमुख हैं। इन स्मारकों से ज्ञात होता है कि उस समय भी भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का पचार-प्रसार दूर-दूर के देशों में हुआ था।

विदेशी विवरण

प्राचीन भारत के इतिहास को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने में विदेशी विवरणों का सर्वाधिक उल्लेखनीय योगदान रहा है। भारत में प्राचीन काल से ही यूनान, चीन, तिब्बत व इस्लामिक देशों से समय-समय पर अनेक लोग यात्रा पर आते रहे हैं। इन यात्रियों ने स्वदेश वापसी के बाद भारत प्रवास के दौरान की अपनी स्मृतियों को लिखित स्वरूप प्रदान किया। बाद में इनके यात्रा विवरण इतिहास-लेखन में बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए। विदेशियों के यात्रा वृत्तांतों में कतिपय अतिशयोक्तियां भी हैं, किंतु इसके बावजूद इनके महत्त्व को कम नहीं किया जा सकता। विदेशी विवरण का अध्ययन हम च[illegible] वर्गों में करेंगे—यूनानी विवरण, चीनी विवरण, तिब्बती विवरण और इस्लामि[illegible] विवरण।

यूनानी विवरण: जिन यूनानियों के विवरण भारतीय इतिहास के [illegible] में विशेष तौर पर उपादेय हैं, वे हैं—हेरोडोटस, नियार्कस, मेगस[illegible] डायमेकस, कार्टियस, एरियन, प्लूटार्क, स्ट्रैबो आदि। सिकंदर के [illegible] अभियान के समय उसके साथ आए विद्वानों के विवरण अपेक्षाकृ[illegible] विश्वसनीय हैं। हेरोडोटस के ग्रंथ 'हिस्टोरिका' से भारत की उत्त[illegible] सीमांत जातियों तथा भारत-ईरान संबंधों की जानकारी मिलती है[illegible] सिकंदर का सेनापति था और उसने यथार्थ तथ्यों का उल्ले[illegible] मेगस्थनीज, सेल्यूकस के राजदूत के रूप में मौर्य शासक के [illegible] वर्षों तक रहा था। उसकी रचना 'इण्डिका' के नाम से प्रसिद्ध [illegible] की इस रचना में चंद्रगुप्त मौर्य, उसके दरबार, शासन-प्रबंध [illegible] की सामाजिक अवस्था के संबंध में महत्त्वपूर्ण जानकारिय[illegible] उसके द्वारा रचित मूल ग्रंथ विलुप्त हो गया है। मेगस्[illegible] सर्वांशतः सत्य नहीं है, क्योंकि भारतीय समा[illegible] के सं[illegible] जानकारी नहीं थी। उसने यह लिखा है कि उसके सम[illegible] नहीं थी, जबकि यह सत्य से परे है। यहां की दास प्र[illegible]

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

दास-प्रथा के स्वरूप से भिन्न अवश्य था। बिन्दुसार के दरबार में यूनानी
राजदूत डायमेकस आया था। उसके यात्रा वृत्तांत से भी अनेक महत्त्वपूर्ण
जानकारियां प्राप्त होती हैं। इनके अतिरिक्त एरियन, स्ट्रैबो, प्लूटार्क आदि
ने भी भारत के संबंध में लिखा है। एक अज्ञात यूनानी ने ईसवी सन् पहली
सदी में 'पेरीप्लस ऑफ द एरिथियन सी' नामक ग्रंथ की रचना की। इस
ग्रंथ से हमें तत्कालीन भारत के व्यापार, बंदरगाहों, प्राकृतिक स्थिति आदि
के संबंध में जानकारी मिलती है। एक अन्य यूनानी लेखक टोलेमी ने भारत
के भूगोल पर एक ग्रंथ लिखा, जिससे भारत के संबंध में कुछ महत्त्वपूर्ण
जानकारियां प्राप्त होती हैं।

चीनी विवरण: बौद्ध धर्म के अभ्युदय और विकास के बाद अनेक चीनी
यात्रियों ने भारत का भ्रमण किया। चीनी यात्री यहां बौद्ध धर्म के अध्ययन
के उद्देश्य से आते थे और बौद्धों के प्रमुख तीर्थस्थलों की यात्रा भी करते
थे। अपनी यात्रा के दौरान कुछ चीनी यात्री तत्कालीन शासकों के दरबार
में भी आए थे। चीनी यात्रियों में सबसे पहले फाह्यान भारत आया था। उस
समय गुप्तवंशी चंद्रगुप्त द्वितीय भारत पर शासन कर रहा था। वह लगभग
15-16 वर्षों तक भारत में रहा। फाह्यान ने अपने यात्रा वृत्तांत में गुप्त शासक
का नामोल्लेख नहीं किया है, लेकिन फिर भी तत्कालीन भारत की
राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति के संबंध में अनेक प्रकार की
महत्त्वपूर्ण जानकारियां मिलती हैं। चीन से आने वाला दूसरा यात्री ह्वेनसांग
था। ह्वेनसांग ने जिस समय भारत की यात्रा की, उस समय हर्ष का शासन
चल रहा था। वह भारत में 13 वर्षों तक रहा तथा चीन लौटने के पश्चात्
उसने 'ता-तांग-सि-यु-की' नाम से उसने अपना यात्रा वृत्तांत लिखा। उसके
यात्रा वृत्तांत से हर्ष, उसके शासन-प्रबंध, कन्नौज तथा प्रयाग की सभाओं,
नालन्दा विश्वविद्यालय तथा तत्कालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक,
आर्थिक एवं धार्मिक स्थिति के संबंध में जानकारी मिलती है। ह्वेनसांग के
बाद ह्वुली तथा इत्सिंग ने भारत की यात्रा की। इत्सिंग का यात्रा वृत्तांत
भारत के प्राचीन इतिहास के संबंध में महत्त्वपूर्ण जानकारी देता है।

तिब्बती विवरण: तिब्बती विवरणों में लामा तारानाथ द्वारा लिखे गए
दो ग्रंथों—'कंग्युर' और 'तंग्युर' ही उल्लेखनीय हैं। इन ग्रंथों में दिए गए
कुछ विवरण अतिशयोक्तिपूर्ण हैं, फिर भी इनसे प्राचीन भारतीय इतिहास
के संबंध में कुछ महत्त्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त होती हैं।

इस्लामिक विवरण: प्राचीन भारत के अंतिम कालखण्ड अथवा पूर्व
मध्यकालीन भारत के संबंध में हमें इस्लामिक विवरणों से भी महत्त्वपूर्ण
जानकारी प्राप्त होती है। इस्लामिक विवरणों में सर्वाधिक प्रसिद्ध अबूरिहान
मुहम्मद बिन अलबेरुनी का विवरण है। ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में महमूद
गजनवी के साथ वह उसके भारत अभियान के दौरान आया था और कई
वर्षों तक उसने भारत में निवास भी किया था। उसने 'तहकीक-ए-हिन्द'
नामक ग्रंथ की रचना की। इस ग्रंथ से हमें तत्कालीन भारत की राजनीतिक,
आर्थिक एवं धार्मिक स्थिति के साथ-साथ भूगोल, ज्योतिष, दर्शन आदि की
भी विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। अलबेरुनी के अतिरिक्त अलबिलादुरी,
सुलेमान, अल-मसूदी के विवरणों से भी महत्त्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त होती
हैं।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्रोत

मध्यकाल में लगभग पूरी तरह से मुसलमानों का शासन रहा। मुस्लिम
सक ऐतिहासिक महत्त्व को अच्छी तरह समझते थे। उन्होंने स्वयं और
ने संरक्षितों द्वारा इतिहास लेखन को पर्याप्त प्रोत्साहन प्रदान किया।
कालीन भारतीय इतिहास की जानकारी प्राप्त करने के लिए हमें चार
के स्रोत प्राप्त होते हैं—

(i) ऐतिहासिक अभिलेख
ii) साहित्य
ii) विदेशी विवरण
v) मुद्रा

ऐतिहासिक अभिलेख

मध्यकालीन भारत को स्पष्ट रूप से दो खण्डों में विभाजित किया जाता
है—सल्तनत काल और मुगल काल। सल्तनत काल का इतिहास जानने
के लिए ऐतिहासिक अभिलेखों की पर्याप्तता है। ऐतिहासिक अभिलेखों में
मुख्य रूप से 'तारीख-ए-फखरुद्दीन मुबारकशाह', 'ताज-उल-मआसिर',
'तबकात-ए-नासिरी', 'तारीख-ए-फिरोजशाही', 'तारीख-ए-मुबारकशाही',
'जफरनामा', 'वाकयात-ए-मुश्ताकी', 'तारीख-ए-दाउदी', 'तारीख-ए-शेरशाही'
आदि का उल्लेख किया जा सकता है। मुगलकाल की जानकारी के लिए
हमें तिमूर, बाबर, जौहर, ख्वांदमीर और बायजीद के संस्मरण, गुलबदन बेगम
के 'हुमायूंनामा', अबुल फजल के 'आइन-ए-अकबरी' और 'अकबरनामा',
'तबकात-ए-अकबरी', 'मुंतखाब-उल-तवारीख', 'तारीख-ए-फरिश्ता' या
'गुलशन-ए-इब्राहिमी', 'पादशाहनामा', 'आलमगीरनामा', 'मासिर-ए-आलमगीरी',
'मुंतखाब-उल-लुबाब' आदि ऐतिहासिक अभिलेख के रूप में प्राप्त होते हैं।
उत्तरवर्ती सल्तनत शासक और उत्तरवर्ती मुगल शासक इतिहास लेखन के
प्रति उदासीन थे और इसलिए इन कालों की समाप्ति के संबंध में हम कुछ
महत्त्वपूर्ण जानकारियों से वंचित रह जाते हैं।

साहित्य

इसके अंतर्गत हम लोकगाथाओं, कथा साहित्य, काव्य और गीत तथा
व्यावहारिक कलाओं और संकलन का उल्लेख करते हैं। लोकगाथाओं को
वैज्ञानिक अध्ययन का दर्जा प्राप्त होता है। मुहम्मद अफी कृत 'जवामी उल
हिकायत' इस काल का प्रसिद्ध कथा संग्रह है। इसका लेखक इल्तुतमिश
का समकालीन था और उसने अपनी कृति को निजामुल्मुल्क को समर्पित
किया था। इसके बाद मलिक मुहम्मद जायसी के 'पद्मावत' का स्थान आता
है। इस ग्रंथ से अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल की घटनाओं की
जानकारी प्राप्त होती है। कथा साहित्य का एक अन्य ग्रंथ मालवा के
बाजबहादुर और रूपमती की कथा है, जिसकी रचना अहमद उल उमरी
ने की थी। यह कथा संग्रह अब 'लेडी ऑफ दि लोट' के रूप में प्राप्य है।
सूफियों के संबंध में जानकारी के लिए हमें हमदानी कृत 'जखीरत-उल-मलूक',
शेख सद-उद्-दीन कृत 'सहायफ' आदि उपलब्ध हैं। मुस्लिम कट्टरवादिता
पर भी दो ग्रंथ उपलब्ध हैं—अमीर खुसरो कृत 'मत्ला-उल-अनवार' और
यूसुफ गदा कृत 'तुहफा-ए-नसायह'।

मध्यकालीन भारत की सामाजिक स्थिति की जानकारी के लिए भी हमें
कुछ विशिष्ट ग्रंथ उपलब्ध होते हैं, यथा- 'किताब-ए-नियामतखाना-ए-नासिरशाही'
से त त्कालीन सौंदर्य प्रसाधन एवं पकवानों के निर्माण के संबंध में जानकारी
प्राप्त होती है। 'हिदायत-उर-रामी' से शास्त्रास्त्र के प्रयोग की जानकारी
मिलती है। तत्कालीन नागरिक एवं धार्मिक कानूनों से संबद्ध एक संकलन
ग्रंथ 'फिक-ए-फिरोजशाही' हैं। इस ग्रंथ का संकलन याकूब करानी ने किया
था। मध्यकालीन भारत के राजनीतिक विचारों पर जियाउद्दीन बरनी कृत
'फतवा-ए-जहांदारी तथा मुबारकशाह कृत 'अदाब-उल-मुलूक' से पर्याप्त
प्रकाश पड़ता है।

विदेशी विवरण

प्राचीन काल की भांति ही मध्यकाल में भी समय-समय पर विदेशी यात्री
भारत में आते रहे और उन्होंने भारत-संबंधी विवरण भी सुंदरतापूर्वक प्रस्तुत
किया। संयोगवश अधिकांश विदेशी यात्री भारत के तटवर्ती क्षेत्रों का भ्रमण
कर ही लौट गए और कुछ यात्री क्षेत्रीय राज्यों में भ्रमण कर लौट गए। इस
कारण से वे संपूर्ण भारत के संबंध में यथार्थ वर्णन करने में असफल रहे।
विदेशी यात्रियों ने मध्यकालीन भारत की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक
एवं धार्मिक स्थिति के संबंध में अनेक प्रकार की महत्त्वपूर्ण जानकारियां दी
हैं। मध्यकालीन भारत में आने वाले विदेशी यात्रियों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण
अल्बरुनी थे। वह महमूद गजनवी के अभियान के समय भारत आया और
उसने अपने यात्रा-वृत्तांत को 'किताब-उल-हिंद' के रूप में प्रस्तुत किया।
13वीं सदी के अंतिम वर्षों में दक्षिण भारत की यात्रा करने वाला मार्कोपोलो
भी महत्त्वपूर्ण जानकारियां प्रस्तुत करता है। पूर्व मुगल काल में भारत की

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

यात्रा करने वाले प्रमुख यात्री थे—मोरक्को का इब्नबतूता, इटली का निकोलो डि कोंटी (जिसने 1294 ई. में विजयनगर की यात्रा की), फारस का अब्दुर्रज्जाक (जो समरकंद के शासक शाहरुख का राजदूत बनकर कालीकट के जमोरिन के दरबार में आया था और उसने लगभग 1442 ई. में विजयनगर की यात्रा की) और रूसी यात्री एथेनेसियस निकितिन (जिसने 1470 ई. में दक्षिण भारत की यात्रा की)। 16वीं शताब्दी से तो यूरोपीय यात्रियों ने भारत की नियमित रूप से यात्रा की। भारत में जेसुइट मिशनरियों के क्रियाकलापों और बारबोसा, राल्फ फिच, ट्रैवेनियर, बर्नियर, मनुची आदि यूरोपीय यात्रियों के वर्णनों से तत्कालीन भारत की जनता के जीवन-यापन के तौर-तरीकों, व्यापारिक स्थिति, वाणिज्य तथा न्याय-व्यवस्था संबंधी महत्त्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त होती हैं।

मुद्रा

सल्तनतकालीन एवं मुगलकालीन भारत की राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति के संबंध में जानकारी की प्राप्ति के लिए मुद्राएं महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। मुहम्मद बिन तुगलक के सिक्के उसके शासनकाल एवं उसके साम्राज्य की स्थिति को प्रकट करते हैं। मध्यकालीन भारत में सल्तनतकाल में और मुगलकाल में परवर्ती शासकों द्वारा अपेक्षाकृत अशुद्ध सिक्के जारी किए गए, जिससे ज्ञात होता है कि धीरे-धीरे इनकी आर्थिक स्थिति बदतर होती गई थी। प्रांतीय शासकों के सिक्के उनके शासनकाल के निर्धारण और वंशावली के निर्माण में महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि बहुत से शासकों के संबंध में ऐतिहासिक अभिलेखों में उल्लेख नहीं हुआ है। मुद्राओं के प्रचलन के आधार पर देशी एवं अंतरदेशीय व्यापार के संबंध में भी महत्त्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त होती हैं।

पुरातात्त्विक स्रोत

पुरातात्त्विक स्रोतों के अंतर्गत शिलालेखों अथवा अभिलेखों का महत्त्व मुगल काल की अपेक्षा मुगल पूर्व काल के लिए अधिक हैं। बंगाल के सुल्तानों—शम्सुद्दीन फिरोज, अलाउद्दीन फिरोज, निजामशाही शासक बुरहान तृतीय आदि के संबंध में जानकारी के स्रोत अभिलेख ही हैं। 14वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी के बीच के बंगाल सल्तनत का इतिहास पूर्ण रूप से अभिलेखीय स्रोतों पर आधारित हैं। अभिलेखों से शासकों की वंशावली के निर्धारण के साथ-साथ उनकी शासन विधि और तत्कालीन सामाजिक स्थिति के संबंध में भी महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है।

मध्यकालीन इतिहास के संबंध में स्मारकों से भी महत्त्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त होती हैं। इतिहासकारों द्वारा ऐसा कहा जाता है कि स्मारकों से मध्यकालीन भारत की सांस्कृतिक स्थिति पर ही प्रकाश पड़ता है, उनसे राजनीतिक इतिहास के संबंध में कुछ भी सहयोग नहीं मिलता। परंतु, इसमें अतिशयोक्ति है, क्योंकि स्मारकों के द्वारा शासकों के साम्राज्य विस्तार के संबंध में भी जानकारी मिलती है। स्मारकों के निर्माण के आधार पर शासकों की कट्टरता और सहिष्णुता की पहचान भी की जाती है।

आधुनिक भारतीय इतिहास के स्रोत

आधुनिक भारत का इतिहास लिखने के लिए किसी भी प्रकार की सामग्री की कमी नहीं है। आधुनिक काल में देश में राजनीतिक, सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास के संबंध में विपुल मात्रा में जानकारियां उपलब्ध हैं।

साहित्यिक स्रोत

आधुनिक भारत के संबंध में ऐतिहासिक स्रोत के रूप में कार्यालयीय अभिलेखों का सर्वाधिक महत्त्व है, यथा—विभिन्न स्तरों के सरकारी संस्थानों के पत्र। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अभिलेख तत्कालीन भारत की व्यापारिक स्थिति के संबंध में जानकारी प्रस्तुत करते हैं। कार्यालयीय अभिलेख जिला स्तर से लेकर सर्वोच्च सत्ता के प्रशासनिक स्तर तक का विवरण प्रस्तुत करते हैं। इनसे बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स तथा बोर्ड ऑफ कंट्रोल की गतिविधियों के संबंध में जानकारी मिलती है। ब्रिटिश क्राउन द्वारा शासन का भार अपने हाथों में ले लिए जाने के बाद भी व्यापक स्तर पर कार्यालयीय अभिलेखों को सुरक्षित रखा गया। इन सामग्रियों के अध्ययन से सभी महत्त्वपूर्ण घटनाक्रमों पर चरणबद्ध प्रकाश पड़ता है तथा इतिहास लेखन में पर्याप्त सहयोग प्राप्त होता है।

यूरोपीय कंपनियों के अभिलेखः पुर्तगालियों, डचों एवं फ्रांसीसी कंपनियों के अभिलेख सत्रहवीं एवं अठारहवीं शताब्दी के इतिहास को लिखने में महत्त्वपूर्ण रूप से उपयोगी है। इन अभिलेखों का महत्त्व मुख्य रूप से आर्थिक इतिहास के लेखन में है, किन्तु राजनीतिक इतिहास के लेखन में भी इनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

देशज साहित्यिक स्रोतः फारसी ऐतिहासिक ग्रंथ आधुनिक भारत के इतिहास के लेखन में भी महत्त्वपूर्ण योगदान करते हैं। इस संदर्भ में गुलाम हुसैन कृत 'सियार-उल-मुताखरिन' का उल्लेख विशेष रूप से किया जा सकता है। मराठी समाचार-पत्रों का भी इस काल के इतिहास लेखन में महत्त्वपूर्ण योगदान है। तमिल भाषा में लिखा गया सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्रोत-ग्रंथ आनंद रंग पिल्लै द्वारा लिखा गया, जो दक्षिण भारत में राजनीतिक गतिविधियों का अभिलेख तैयार करने में संलग्न थे।

विविध कार्यः बहुत से ऐसे ग्रंथ हैं, जो संस्मरण, जीवन-वृत्त और यात्रा-वृत्तांत के रूप में लिखे गए हैं और ये ग्रंथ अट्ठारहवीं शताब्दी तथा उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों के संबंध में अनेक प्रकार की महत्वपूर्ण जानकारियां प्रस्तुत करते हैं। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में भारत में बहुत बड़ी संख्या में समाचार-पत्रों का प्रकाशन हुआ और इनसे हमें इतिहास के संबंध में महत्त्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त होती हैं।

इतिहास लेखन में स्वरूपगत परिवर्तन

प्राचीन भारतीयों पर इतिहास की सूझ की कमी का आरोप लगाया जाता रहा है। वास्तव में उन्होंने जो इतिहास लिखा उसका स्वरूप आधुनिक इतिहास के जैसा नहीं है। लेकिन यदि सूक्ष्मता से तत्कालीन रचनाओं पर दृष्टिपात किया जाये तो उसमें कुछ इतिहासपरक चेतना जरूर दिखाई पड़ती है। पुराणों में जो जानकारियां हैं वे यद्यपि विश्वकोश-सदृश हैं तथापि उनमें गुप्तशासन के आरंभिक वर्षों तक की वंशावली प्राप्त हो जाती है। उनमें कहीं-कहीं घटनाओं और घटनास्थलों का जिक्र है और कहीं-कहीं उन घटनाओं के कारण और प्रभावों का भी विवरण प्राप्त हो जाता है। पुराणों के रचयिता इस बात से अनभिज्ञ नहीं थे कि परिवर्तन संसार का नियम है और यही इतिहास की पृष्ठिभूमि बनती है। पुराणों में चार युगों का उल्लेख मिलता है—कृत, त्रेता, द्वापर और कलि। इनमें समय के महत्त्व को जो कि इतिहास का सर्वप्रमुख तथ्य है, तरजीह दी गई है। प्राचीन भारत में ही विभिन्न युगों की शुरुआत हुई थी। विक्रम संवत् 58 ई.पू. में और शक संवत् 78 ई.पू. में तथा गुप्तकाल 319 ई.पू. में आरम्भ हुआ था।

शिलालेखों एवं अभिलेखों में विभिन्न घटनाओं के घटित होने के समय और स्थान उत्कीर्ण किए गए थे। तीसरी शताब्दी ई.पू. के अभिलेखों में अशोक की शासनकालीन घटनाओं से सम्बद्ध जानकारियां संकलित हैं। इसी तरह, पहली शताब्दी ई.पू. के हाथीगुम्फा अभिलेख से कलिंग शासक खारवेल से संबंधित जानकारियां प्राप्त होती हैं। इसमें उसके जीवन में घटित ह घटनाओं का वर्षक्रम के अनुसार वर्णन उपलब्ध है।

यद्यपि भारतीयों ने जीवनचरित के लेखन में अपनी ऐतिहासिक का प्रदर्शन किया है तथापि उनमें कपटपूर्ण प्रशंसा और अतिशयोक्ति अनुचित समावेश भी देखने को मिलता है। इसका एक प्रारूपिक उ है बाणभट्ट का हर्षचरित। संध्याकर नंदी के रामचरित में, जिसकी रच शताब्दी ई.पू. में हुई थी, कैवर्त्त कृषकों एवं युवराज रामपाल के बीच का वर्णन है। और उसमें रामपाल का विजय दिखाया गया है। 3 'मूषिक वंश', जो ग्यारहवीं शताब्दी ई.पू. में लिखा गया था, में के शासक मूषिक के वंश का परिचय मिलता है।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

शिक्षित भारतीयों ने यद्यपि अपने पारंपरिक इतिहास को हस्तलिखित पांडुलिपियों पुराणों एवं अर्द्ध-जीवन चरितों के रूप में प्राप्त कर लिया था तथापि प्राचीन भारत के इतिहास पर शोधकार्य 18वीं शताब्दी के मध्य से शुरू हुए, क्योंकि आंशिक रूप से इस कार्य में ब्रिटेन के शोधकर्त्ताओं एवं विद्वानों ने रूचि ली और आंशिक रूप से इसमें उनके औपनिवेशक प्रशासन की आवश्यकता भी थी।

1857 के विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने यह महसूस किया कि उन्हें जिन पर शासन करना है उनकी सामाजिक और वैयक्तिक मनोभावनाओं के बारे में जानकारी होना आवश्यक है। इसी तरह, ईसाई मिशनरियों ने भी उन हिंदुओं की खोज शुरू की, जिनके आधार पर हिन्दू धर्मावलंबियों को दिग्भ्रमित कर ब्रिटिश सत्ता की जड़ें मजबूत की जा सके। इन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्राचीन पांडुलिपियों को वृहत् पैमाने पर अनुवादित करने का कार्य मैक्समूलर के नेतृत्व में आरंभ हुआ। कुल मिलाकर 50 ग्रंथों का अनुवाद किया गया, जिनमें किसी-किसी ग्रंथ के सात-सात अंक सम्मिलित थे। इन ग्रंथों को 'पूर्व की पवित्र पुस्तकें' श्रेणी के अंतर्गत प्रकाशित किया गया था। यद्यपि इस श्रेणी में कुछ चीनी तथा इतालवी रचनाएं भी सम्मिलित थीं। तथापि, उनमें भारतीय ग्रंथों की ही प्रधानता थी।

इन संस्करणों की भूमिका में तथा इन पर आधृत पुस्तकों में मैक्समूलर तथा अन्य पश्चिमी साहित्यकारों ने प्राचीन भारतीय इतिहास तथा समाज से सम्बद्ध सामान्य अवधारणा को व्यक्त किया। उन्होंने लिखा कि प्राचीन भारतीयों में इतिहास की सूझ नहीं थी, विशेषकर उन्हें समय और कालक्रम का ज्ञान नहीं था और वे तानाशाही शासन के अभ्यस्त थे। लोग तीसरी दुनिया और दिव्य ईश्वरीय शक्तियों की ओर ज्यादा झुके हुये थे तथा उनका ध्यान इस विश्व की समस्याओं की ओर कम था। जाति प्रथा को सामाजिक विभेदीकरण का सर्वाधिक दोषपूर्ण कारण माना जाता था। पश्चिमी विद्वानों ने लिखा है कि भारतीयों में न तो कभी देशभक्ति की भावना थी और न ही वे स्वशासन के प्रति कभी जागरूक रहे।

इस प्रकार की अधिकांश बातों का सामान्यीकृत स्वरूप वी.ए. स्मिथ (1843-1920) की पुस्तक प्राचीन भारत का इतिहास (अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया) में देखने को मिलता है। इन्होंने पहली बार 1904 ई. में व्यवस्थित रूप में प्राचीन भारत के इतिहास को तैयार किया। स्मिथ का इतिहास के प्रति उप-साम्राज्यवादी दृष्टिकोण था। उसने भारत में विदेशियों की भूमिका पर विशेष ध्यान दिया। सिकंदर का भारत पर आक्रमण उसकी पुस्तक के एक-तिहाई भाग में वर्णित है। उसकी पुस्तक में भारत को एक ऐसे शरणस्थली के रूप में व्यक्त किया गया है जहां ब्रिटिश सत्ता के पूर्व तक एकता की भावना नहीं थी।

निष्कर्षतः, भारतीय इतिहास के संदर्भ में ब्रिटिश इतिहासकारों के हस्तक्षेप ने भारतीय चरित्रों और उपलब्धियों को गौण करने का दुष्कृत्य किया और, औपनिवेशिक शासन की वकालत की।

वे भारतीय विद्वान् जिन्होंने पश्चिमी शिक्षा प्राप्त की थी, उपनिवेशवादियों द्वारा अपने पूर्व के इतिहास को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने से क्षुब्ध थे, साथ ही उनकी चिंता का विषय पतनशील भारतीय समाज और विकासशील ब्रिटिश पूंजीपति समाज के बीच बढ़ती दूरी भी था। इसलिए, उन्होंने प्राचीन भारतीय इतिहास को देशी स्वरूप में लिखने का कार्य आरंभ किया। इसमें उनका विशेष झुकाव सामाजिक पुनर्गठन और स्वशासन की ओर था। लेकिन, कुछ ऐसे विद्वान् भी थे जिन्होंने तार्किक और वस्तुनिष्ठ अवधारणा को अपनाया।

तर्कवादी या बुद्धिवादी विचारधारा से उद्भूत ऐसे ही इतिहासकार हैं राजेन्द्र लाल मित्रा, जिन्होंने इण्डो-आर्यन्स नामक ग्रंथ की रचना की। साथ वेदों पर आधारित कुछ ग्रंथ भी लिखे। अपने ग्रंथ में उन्होंने इस बात का भी जिक्र किया है कि प्राचीनकाल में भारतीय गोमांस का भक्षण करते थे। महाराष्ट्र के आर.जी.भण्डारकर क्रांतिकारी इतिहासकार के रूप में उभरे हुए। इन्होंने अपनी रचनाओं में विधवा विवाह, बाल-विवाह और वेश्यावृत्ति से संबद्ध अपने विचार प्रस्तुत किए। इन्होंने दक्कन के सातवाहनों और वैष्णव तथा अन्य मतों को अपनी रचना का विषय बनाया। वी.के. राजवाड़े ने संस्कृत की पांडुलिपियों की खोज में कई गांवों की यात्रा की तथा मराठा-इतिहास की कई पांडुलिपियों का संग्रह-कार्य भी किया। इन सभी स्रोतों का 22 अंकों में प्रकाशन हुआ। मराठी में उन्होंने भारतीय विवाह पद्धति पर आधारित ग्रंथ लिखा जो काफी चर्चित रहा, क्योंकि इसमें वैदिक तथ्यों के साथ-साथ भारत में विवाह-प्रथा के विकास का भी मौलिक सूझ के वर्णन किया गया था। पी.वी. काणे, जो एक महान् संस्कृतज्ञ थे, ने 'धर्मशास्त्र के इतिहास' में प्राचीन सामाजिक नियमों और रीति-रिवाजों का वर्णन किया। यह पुस्तक पांच भागों में प्रकाशित हुई थी। इससे हमें प्राचीन भारतीय सामाजिक-प्रक्रियाओं से सम्बद्ध जानकारी प्राप्त होती है।

भारतीय विद्वानों ने प्राचीन भारत का विशद् अध्ययन कर यह बात सामने लाने का प्रयास किया कि भारतीयों का अपना मौलिक-राजनीतिक इतिहास था और वे प्रशासनिक क्षमता वाले थे। अभिलेख-विशेषज्ञ डी.आर. भण्डारकर (1875-1905) ने अशोक तथा प्राचीन भारतीय राजनीतिक संस्थाओं पर पुस्तक लिखी। एच.सी. राय चौधरी (1892-1950) ने प्राचीन भारत के इतिहास की पुनर्व्याख्या की तथा इसे महाभारत युद्ध से लेकर गुप्त साम्राज्य तक विस्तृत किया। यह काल दसवीं शताब्दी ई.पू. से 6ठी शताब्दी ई. तक का था। फिर भी, इनकी रचना में तब कट्टर ब्राह्मणवाद झलकता है जब वे अशोक की शांति-नीति की आलोचना करते हैं। आर.सी. मजूमदार (1888-1980) ने हिन्दू-पुनरुज्जीवन को प्रबल रूप में अपनी रचना का विषय बनाया है।

आरंभिक इतिहासकारों में से अधिकांश ने दक्षिण भारत के इतिहास के प्रति पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है। के.ए. नीलकंठ शास्त्री (1892-1975) ने दक्षिण भारत के प्रति ठीक से ध्यान दिया और 'दक्षिण भारत का इतिहास' नामक ग्रंथ की रचना की। उनके नेतृत्व में दक्षिण भारत के राजवंशों के संबंध में शोध प्रपत्र भी प्रस्तुत किए गए।

1960 के पूर्व तक भारत के अधिकांश विद्वानों को राजनीतिक इतिहास ने ही आकर्षित किया। जिन विद्वानों ने भारत के विस्तृत इतिहास की ओर ध्यान दिया, उन्होंने राष्ट्रवाद से भी प्रेरणा प्राप्त की। राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने सिकंदर के आक्रमण की ओर कम ध्यान दिया है। उनके द्वारा पोरस और सिकंदर के वार्तालाप तथा उत्तर-पश्चिम में सेल्यूकस पर चंद्रगुप्त मौर्य की विजय को ही रेखांकित किया गया है। के.पी. जायसवाल (1881-1937) और ए.एस. अल्टेकर जैसे विद्वानों ने शकों और कुषाणों के ऊपर विस्तृत शोध कार्य प्रस्तुत किये। के.पी. जायसवाल ने ही प्राचीन भारत में गणराज्यों के अस्तित्व को स्थापित किया।

ए.एल. बाशम (1914-86) ने प्राचीन भारत को आधुनिक दृष्टिकोण से परखा। उसने 1951 में 'अद्भुत भारत' (The wonder that was India) की रचना की। यह ग्रंथ प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का सहानुभूतिपूर्ण सर्वेक्षण प्रस्तुत करता है। वी.ए. स्मिथ एवं अन्य ब्रिटिश इतिहासकारों के इस क्षेत्र में आने के बाद भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की पुनर्समीक्षा शुरू हुई। यहां से राजनीतिक इतिहास का गैर-राजनीतिक इतिहास में स्थानांतरण हुआ। यही परिवर्तन डी.डी. कौशाम्बी की पुस्तक में दृष्टिगत है। कौशाम्बी ने प्राचीन भारत के आर्थिक-सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास को प्रस्तुत किया।

अंतिम तीन दशकों में प्राचीन भारत पर शोध कार्य करने की दिशा में आमूल परिवर्तन हुए हैं। इन वर्षों में भारत की आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रक्रियाओं को रेखांकित करते हुए उसे राजनीतिक विकास के साथ संपृक्त किया जाता है।

काल निर्धारण

भारतीय इतिहास के संदर्भ में काल निर्धारण बहुत ही कठिन कार्य है। ऐसा इसलिए कि काल निर्धारण के लिए एक ही तरह के तत्त्व उपलब्ध नहीं होते। किसी काल में शासक को आधार बनाया जाता है, तो किसी काल में साहित्य को और किसी काल के लिए क्षेत्र को। कुछ समय ऐसा है, जिसके लिए कोई भी स्पष्ट प्रवृत्ति दृष्टिगोचर नहीं होती।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

भारत में मानव बहुत ही प्राचीन काल से निवास करता आ रहा है। परंतु उनके संबंध में कोई विस्तृत जानकारी प्राप्त नहीं होती। इनके द्वारा जैसे-जैसे किसी वस्तु विशेष का उपयोग किया गया, वैसे-वैसे उस कालखण्ड का नामकरण किया गया। प्रागैतिहासिक काल को पाषाणों के प्रयोग के आधार पर पुरापाषाण काल, मध्य पाषाणकाल और नवपाषाण काल का नाम दिया जाता है। इसके बाद ताम्रपाषाण काल और कांस्यकाल का समय आता है। 2300 ई.पू. के बीच के कालखण्ड को सैंधव सभ्यता काल कहा जाता है। इसके बाद के लगभग 200 से 250 वर्षों के इतिहास के संबंध में कोई स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती। भारतीय इतिहास को एक देश के इतिहास के रूप में वैदिक काल से देखा जाता है। 1500 ई.पू. में आर्यों ने यहां सभ्यता की स्थापना की। दक्कन और सुदूर दक्षिण का आर्यीकरण अपेक्षाकृत बाद में हुआ। छठी शताब्दी के पूर्व में भारत में अनेक धर्मों का अभ्युदय हुआ और इसलिए इस काल को धार्मिक आंदोलन के काल की संज्ञा दी जाती है।

1500 ई.पू. से 1000 ई.पू. के बीच के कालखण्ड को पूर्व वैदिक काल की संज्ञा दी जाती है, जिसके संबंध में विस्तृत जानकारी ऋग्वेद से प्राप्त होती है। 1000 ई.पू. से 600 ई.पू. के कालखण्ड को उत्तरवैदिक काल कहते हैं और इस काल की जानकारी हमें सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण ग्रंथों, आरण्यक, उपनिषद् आदि से मिलती है। 600 ई.पू. से बुद्ध काल अथवा महाजनपद युग की शुरुआत होती है और 322 ई.पू. में मौर्य साम्राज्य की स्थापना के पूर्व तक चलती रहती है। 322 ई.पू. से 185 ई.पू. के बीच के कालखंड को मौर्यकाल की संज्ञा दी जाती है। 185 ई.पू. से 320 ई. के बीच के कालखण्ड को मौर्योत्तर काल की संज्ञा दी जाती है। इस समय हम विदेशी आक्रमणों (यूनानी, शक, पहलव, कुषाण आदि) का अध्ययन करते हैं। इस कालखण्ड में शकों, कुषाणों एवं सातवाहनों का ही विशेष महत्व है। इसके बाद 320 ई. से लेकर 600 ई. तक के कालखण्ड को गुप्तकाल की संज्ञा दी जाती है। 600 ई. से 1206 ई. तक के कालखण्ड को गुप्तोत्तर काल की संज्ञा दी जाती है। इस कालखण्ड में मुख्य रूप से राजपूतों, पालों, प्रतिहारों, राष्ट्रकूटों, सेनों आदि का अध्ययन किया जाता है।

भारत में मुस्लिम सत्ता की स्थापना के साथ ही मध्यकाल का आरंभ हो जाता है। मुस्लिम सत्ता के स्वरूप के आधार पर मध्यकाल को दो खण्डों में विभक्त किया जाता है—सल्तनत काल (1206-1526 ई.) और मुगल काल (1526-1857 ई.)। परंतु, सूक्ष्मता से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि मध्यकाल आधुनिक काल की सीमा में प्रविष्ट हो जाता है। 1757 में प्लासी के युद्ध के समय से मुगल सत्ता क्षीण होने लगती है और 18वीं शताब्दी के अंत में आधुनिक शिक्षा, आधुनिक राजनीतिक एवं सामाजिक-आर्थिक विचारधाराओं का देश में अभ्युदय होने लगता है। 1857-61 के काल को भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना का काल माना जाता है। इसके पूर्व भारत पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन था। भारत में ब्रिटिश सत्ता का अंत 15 अगस्त 1947 ई. में हो गया और हमारे इतिहास का काल निर्धारण भी यहीं समाप्त हो जाता है।

पुनरीक्षण अभ्यास

प्रश्न	उत्तर
1. साहित्यिक, पुरातात्त्विक और विदेशी विवरण एक-दूसरे के अनुपूरक स्रोत के रूप में पहली बार किस काल के संदर्भ में उपलब्ध होते हैं?	1. मौर्यकाल
2. मौर्यपूर्व के काल के लिए किस स्रोत से हमें सर्वाधिक जानकारी मिलती है?	2. पुराण
3. प्रसिद्ध बौद्धधर्म ग्रंथ 'ललितविस्तार' की रचना कहां हुई?	3. नेपाल
4. गौतम बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाओं को आधार बनाकर रचित जातकों की कुल संख्या कितनी है?	4. 549
5. जैनों के धार्मिक ग्रंथों में सर्वाधिक प्राचीन कौन हैं?	5. बारह अंग
6. 12वीं सदी में रचित 'परिशिष्ट पर्व' के रचयिता कौन थे?	6. हेमचन्द्र
7. भारतीय साहित्य में पहली बार किस ग्रंथ में ऐतिहासिकता की सम्पूर्ण झलक मिलती है?	7. राजतरंगिणी
8. 'रत्नावली' नामक प्रसिद्ध नाटक की रचना किसने की थी?	8. हर्ष
9. किस शासक ने राजकीय अभिलेखों को खुदवाने की परम्परा शुरू कर भारतीय इतिहास को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान किया?	9. मौर्य सम्राट् अशोक
10. भारत के किस प्राचीनतम अभिलेख में पहली बार संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ?	10. रूद्रदामन् का जूनागढ़ अभिलेख
11. प्राचीन भारत के कौन-से अभिलेख प्रथम पठित अभिलेख हैं?	11. अशोक के अभिलेख
12. प्राचीन भारत में सर्वाधिक स्वर्ण सिक्के किन शासकों ने जारी किए?	12. गुप्त शासकों ने
13. हिन्द-यूनानी शासकों के संबंध में जानकारी के लिए हमें किस एकमात्र स्रोत पर निर्भर रहना पड़ता है?	13. सिक्के
14. भारत की उत्तर-पश्चिम सीमांत की जातियों तथा भारत-ईरान संबंधों की जानकारी किस यूनानी ग्रंथ से प्राप्त होती है?	14. हिस्टोरिका
15. भारत आने वाला पहला ज्ञात चीनी यात्री कौन था?	15. फाह्यान
16. हर्ष के शासनकाल में कौन-सा चीनी यात्री भारत आया था?	16. हेनसांग
17. हेनसांग ने अपने यात्रा-वृत्तांत को किस नाम से प्रकाशित करवाया था?	17. 'ता-तांग-सि-यू-की'
18. 'तहकीक-ए-हिन्द' नामक ग्रंथ की रचना किसने की थी?	18. अलबरूनी
19. 'हुमायूंनामा' की रचना किसने की थी?	19. गुलबदन बेगम
20. 'जखीरत-उल-मलूक' तथा 'सहायफ' नामक प्रसिद्ध ग्रंथों से किनके संबंध में महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है?	20. सूफीसंत
21. मध्यकालीन भारत के सौंदर्य प्रसाधन एवं पकवानों के निर्माण के संबंध में किस ग्रंथ से महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है?	21. 'किताब-ए-नियामतखाना-ए-नासि
22. 'फिक-ए-फिरोजशाही' में किस विषय का संकलन है?	22. नागरिक एवं धार्मिक कानून
23. 1294 ई. में दक्षिण भारत में विजयनगर की यात्रा किसने की थी?	23. निकोलो कोंटी
24. रूसी यात्री एथेनिसियस निकितिन ने किस वर्ष दक्षिण भारत की यात्रा की थी?	24. 1470 ई.
25. पूर्व मुगलकाल में भारत की यात्रा करने वाला इब्नबतूता किस देश का निवासी था?	25. मोरक्को

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

2. पाषाण काल एवं ताम्र पाषाण काल

भारत के प्रामाणिक इतिहास का प्रारंभ मौर्यकाल से होता है, क्योंकि पुरातात्त्विक एवं साहित्यिक दोनों प्रकार के स्रोतों की प्रामाणिक पुष्टि किसी भी काल को ऐतिहासिक बनाने के लिए आवश्यक मानी जाती है। तीसरी सहस्राब्दी ई.पू. में ही भारत में उच्चकोटि की मानव-सभ्यता का विकास हो गया था और पन्द्रह सौ ई.पू. में उत्कृष्ट साहित्य का भी सृजन हो गया था। परन्तु, दुर्भाग्यवश तीसरी सदी ई.पू. के पूर्व के कालखण्ड में भारत में एक साथ साहित्यिक और पुरातात्विक स्रोत उपलब्ध नहीं है।

भारत का इतिहास जानने के लिए उसकी पृष्ठभूमि को जानना आवश्यक है। इतिहास का सृजन मानव विकास के साथ ही मूल रूप से होता है। भारत के आदि निवासी कौन थे? उनका रहन-सहन कैसा था? और उन्होंने किस प्रकार अपना विकास किया?—ये प्रश्न ऐसे हैं, जिनका संबंध भारतीय इतिहास से पूर्णतः जुड़ा है।

भारतीय इतिहास के प्राचीन काल को सामान्यतः तीन कालखंडों में विभाजित किया जा सकता है—प्रागैतिहासिक काल, आदि ऐतिहासिक काल और पूर्ण ऐतिहासिक काल। इन सभी कालखण्डों को बाद में अलग-अलग विश्लेषित किया जाएगा। प्रागैतिहासिक काल के अन्तर्गत पाषाण संस्कृतियों को रखा जाता है, आदि ऐतिहासिक काल के अन्तर्गत सैंधव-सभ्यता और ऋग्वैदिक सभ्यता को रखा जाता है, जबकि मौर्यकाल से पूर्ण ऐतिहासिक काल की शुरुआत होती है।

भूगर्भवेत्ताओं का ऐसा मानना है कि भारत का दक्षिण भारतीय खण्ड सर्वाधिक प्राचीन है और किसी समय यह दक्षिण अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया के साथ एक ही भूखण्ड से सम्पृक्त था। उत्तरी भारत का निर्माण अपेक्षाकृत बाद में हुआ, विशेषकर हिमालय पर्वत का निर्माण सर्वाधिक बाद में। भूगर्भवेत्ताओं के इस तर्क के आधार पर ऐसा अनुमान किया जाता है कि भारत के आदि मानव दक्षिण भारत में ही निवास करते होंगे, यद्यपि इस संबंध में प्रामाणिक तथ्य उपलब्ध नहीं हैं। आधुनिक काल में व्यापक उत्खननों तथा उत्खननों से प्राप्त वस्तुओं की तर्कपूर्ण व्याख्या के बाद के अनुमानों से प्रागैतिहासिक काल के क्रमिक विकास का अध्ययन सुगम होता जा रहा है।

पाषाण काल

विशिष्ट प्रमाणों के अभाव में प्रागैतिहासिक कालखण्डों को वस्तुओं की प्रायोगिक बहुलता के आधार पर नामित किया जाता है। पुरातत्त्वेत्ताओं का ऐसा मानना है कि मानव की उत्पत्ति पाषाणिक पृष्ठभूमि में ही हुई थी। पाषाण-युग में मानव की प्रकृति घुमंतू थी और उनकी आजीविका का आधार आखेट था। इस काल में मानव आखेट के लिए पाषाणों से निर्मित औजारों का उपयोग करता था और निवास के लिए गुफाओं का चयन करता था। पाषाण काल में भी मानव के स्वभाव में क्रमिक परिवर्तन हुए और इस कालखण्ड को तीन उपखण्डों में विभक्त किया जाता है—

1. पुरापाषाण काल, 2. मध्यपाषाण काल और 3. नवपाषाण काल

पुरापाषाण काल

पुरापाषाण युग को तीन अवस्थाओं में बांटा जाता है। प्रथम को आरंभिक या निम्न-पुरापाषाण युग, दूसरी को मध्य-पुरापाषाण युग और तीसरी को उच्च-पुरापाषाण युग कहते हैं। जब तक बोरी के शिल्प कौशलों के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं मिल जाती तब तक मोटे तौर पर पहली अवस्था को 2500000 ई.पू. और 100000 ई.पू. के बीच; दूसरी अवस्था को 10,000 ई. और 40,000 ई.पू. के बीच और तीसरी को 40,000 ई.पू. और 10,000 ई.पू. के बीच रख सकते हैं, पाषाणकालीन सभ्यता तथा संस्कृति का अध्ययन सर्वप्रथम ब्रूस फुट महोदय ने 1862 ई. में किया था। भारत में पुरापाषाण-कालीन अवशेषों का अन्वेषण मद्रास (वर्तमान चेन्नई) के निकट पल्लावरम् नामक स्थान में किया गया था। इसके बाद गोदावरी नदी की घाटी में पैठन (प्रतिष्ठान) नामक स्थल से इस युग के अवशेष प्राप्त किए गए हैं। कालांतर में पंजाब, कश्मीर, हैदराबाद, मैसूर, बम्बई (मुंबई), उड़ीसा आदि प्रदेशों में भी इस काल के भग्नावशेष प्राप्त किए गए।

भारत की पुरापाषाण युगीन सभ्यता का विकास प्लाइस्टोसीन काल या हिम-युग में हुआ। यद्यपि पत्थर के औजारों के साथ मानव अवशेष जो कि अफ्रीका में मिले हैं वे 26 लाख वर्ष पुराने माने जाते हैं, तथापि यदि हम भारत में मिली बोरी की सामग्री को छोड़ दें तो पत्थर के औजारों से स्पष्टतः लक्षित मानव की प्रथम उपस्थिति मध्य-प्लाइस्टोसीन से पूर्व की नहीं ठहरती है। प्लाइस्टोसीन काल में पृथ्वी की सतह का बहुत अधिक भाग, विशेषकर अधिक ऊंचाई पर और उसके आस-पास के स्थान, बर्फ की चादरों से ढका रहता था। किन्तु पर्वतों को छोड़ उष्णकटिबंधीय क्षेत्र बर्फ से मुक्त था, बल्कि वहां दीर्घ काल तक भारी वर्षा होती रही।

पुरापाषाण-कालीन निवासियों के संबंध में कोई निश्चित मत निर्धारित करना अत्यंत दुष्कर कार्य है, क्योंकि इस काल के मनुष्य का किसी भी प्रकार का अस्थि-अवशेष प्राप्त नहीं हुआ है। कुछ विद्वानों की मान्यता यह है कि पुरापाषाण काल में भारत में निवास करने वाले लोग अण्डमान द्वीप में निवास करने वाले वर्तमान मानवों की भांति हब्शी जाति के थे। इन लोगों का रंग काला और कद छोटा होता था। इनकी पहचान चपटी नाक वालों के रूप में भी की जाती है।

शिवालिक श्रेणी के निम्न भाग, उत्तरी-पश्चिमी पंजाब, पुंछ तथा जम्मू-कश्मीर में उपलब्ध उपकरणों के आधार पर अधिकांश विशेषज्ञ यह मानते हैं कि भारत में आदि मानव का प्रादुर्भाव पंजाब में सिन्धु तथा झेलम नदियों के बीच में स्थित क्षेत्र में हुआ था। पुरापाषाण काल की जलवायु आजकल की जलवायु से भिन्न थी। इसमें तीव्र उतार-चढ़ाव के साक्ष्य मिले हैं। हिमावर्त्तन तथा अतिवृष्टि इस काल की जलवायु की सर्वप्रमुख विशिष्टता थी। अनुमानों के अनुसार, पुरापाषाण काल एक ऐसा युग था, जब भयंकर भौगोलिक परिवर्तन हुआ करते थे। महाशीत, तुषारपात, अतिवृष्टि, प्लावन, झंझावात आदि के भीषण प्रकोप से रक्षा की व्यवस्था करना मनुष्य के लिए आवश्यक था।

पुरापाषाण काल में लोग वृक्षों की पत्तियों, छाल तथा पशुओं के चर्म

पुरापाषाण काल के औजार

चीरने का औजार: इसमें दुहरी धार होती है। इसका उपयोग पेड़ों को काटने और चीरने के लिए होता था।

काटने के औजार: एक बड़ा स्थूल औजार जिसमें एकतरफा धार होती है और इसका उपयोग काटने के लिए किया जाता था।

पत्तर: यह एक प्रकार का औजार था, जिसे पत्थर को तोड़कर बनाया जाता था। पत्तर की सतह पर सकारात्मक समाघात और इसके सारभाग में एक नकारात्मक समाघात (Negative bulb of Percussion) होता है। जिस स्थान पर पत्थर के हथौड़े से चोट की जाती है उसे समाघात स्थल कहते हैं। इस चोट से जो गोल हल्का उत्तल हिस्सा कट कर निकलता है उसे सकारात्मक समाघात कहते हैं। इस चोट के परिणाम स्वरूप सारभाग का जो हिस्सा अवतल हो जाता है उसे नकारात्मक समाघात कहते हैं। पत्तर बनाने की कुछ तकनीकें थीं, फ्री फ्लेकिंग तकनीक, स्टेप फ्लेकिंग तकनीक, ब्लॉक आन ब्लॉक तकनीक, द्विधुवीय तकनीक आदि।

खुरचनी: इसमें एक पत्तर या ब्लेड होता है और इसका किनारा धारदार होता है। इसका उपयोग पेड़ की खाल या जानवरों का चमड़ा उतारने में किया जाता होगा।

लक्षणी: यह भी पत्तर या ब्लेड के समान ही होता है, पर इसका किनारा दो तलों के मिलने से बनता है। लक्षणी के काम वाले हिस्से की लम्बाई 2-3 से.मी. से अधिक नहीं होती है।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

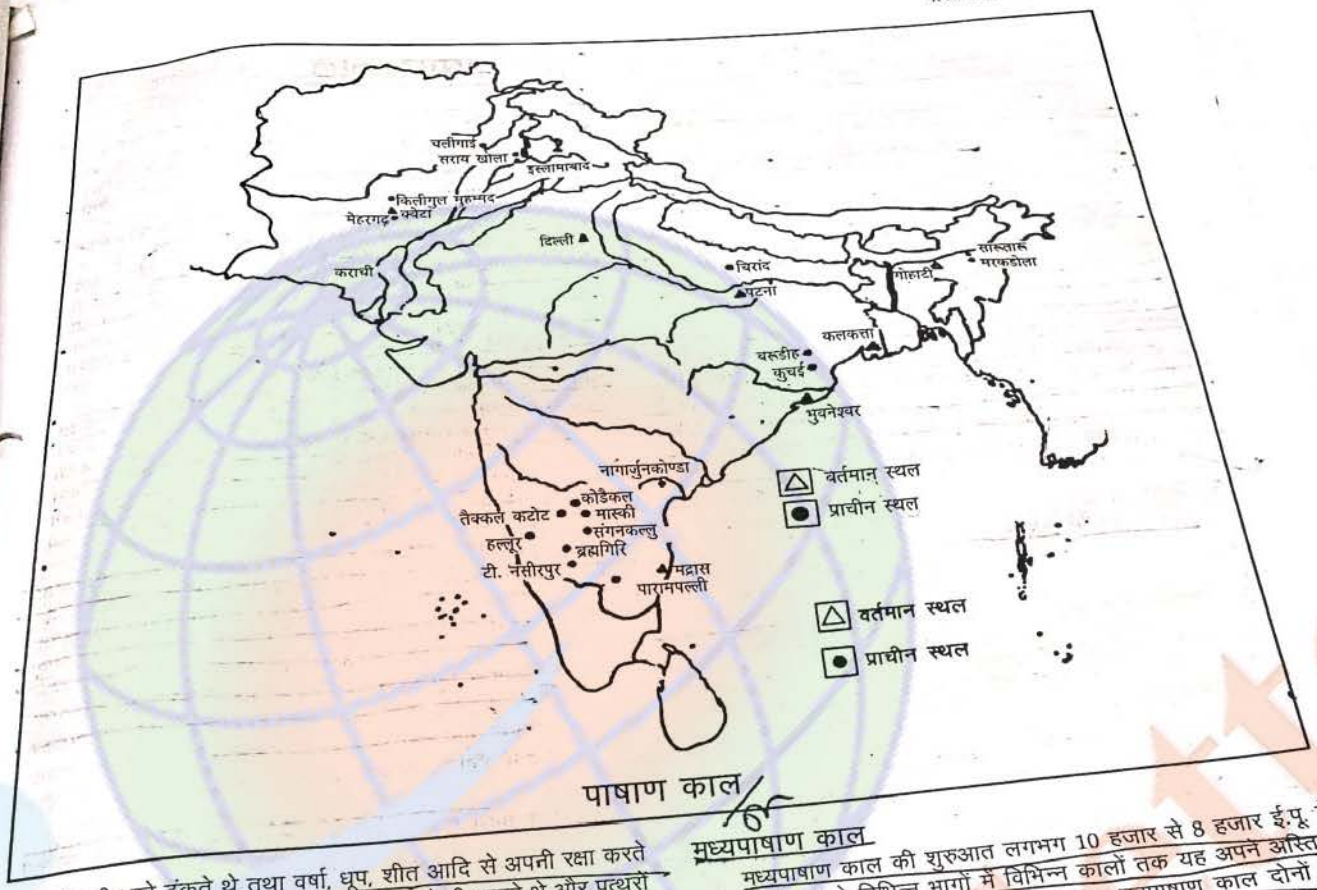

पाषाण काल

से अपने शरीर को ढंकते थे तथा वर्षा, धूप, शीत आदि से अपनी रक्षा करते थे। इस काल के लोग अपने सभी औजार पत्थर से ही बनाते थे और पत्थरों की प्राप्ति का स्रोत कठोर चट्टानें थीं। इस काल में वैसे औजारों का निर्माण किया जाता था, जिससे मानव की विभिन्न प्रकार की तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाए। पुरापाषाण काल के अधिकांश औजार बिल्लौर पत्थर से बने होते थे और उनमें सुघडता का स्पष्ट अभाव था। इस काल में कुछ औजार लकड़ी और हड्डियों के भी बने होते थे।

पुरापाषाण काल में मनुष्य का ध्यान कृत्रिमता की ओर नहीं आ पाया था। इस काल में वे अपने विकास के लिए पूर्ण रूप से प्रकृति-प्रदत्त साधनों पर ही निर्भर थे। अनुमानतः, उस समय जनसंख्या बहुत ही कम थी और लोगों की आवश्यकताएं भी सीमित ही थीं। जंगलों से प्राप्त फल एवं फूल, पशुओं के मांस आदि आजीविका के प्रमुख आधार थे, इसलिए इस युग को 'आखेट युग' भी कहा जाता है।

पुरापाषाण काल में व्यापार-विनिमय, कला, मनोरंजन, धर्म, अन्त्येष्टि आदि के संबंध में अनुमान मात्र ही लगाया जा सकता है। अन्तेष्टि या शवाधान के संबंध में दो मान्यताएं स्थापित हैं—(i) इस काल में शवों को गाड़ दिया जाता था और (ii) शवों को खुले मैदान में छोड दिया जाता था, जहां पशु-पक्षी उन्हें अपना आहार बना लेते थे।

मध्यपाषाण काल

मध्यपाषाण काल की शुरुआत लगभग 10 हजार से 8 हजार ई.पू. में हुई और विश्व के विभिन्न भागों में विभिन्न कालों तक यह अपने अस्तित्व में रहा। यह कालखण्ड पुरापाषाण काल तथा नवपाषाण काल दोनों की सम्मिश्रित विशिष्टताओं का प्रदर्शन करता है। व्यापक उत्खनन के बाद गुजरात में इस काल की कुछ मानव-अस्थियां प्राप्त हुई हैं। इन अस्थियों का परीक्षण करने के बाद पुरातत्त्वेत्ता इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि मध्यपाषाण काल के मानव हब्शी थे।

इस काल में भारत में मानव ने छोटी-छोटी पहाड़ियों का उपयोग निवास-स्थान के रूप में किया था। इस कालखण्ड में भी लोगों की आजीविका का मुख्य साधन आखेट ही था। मध्यपाषाण काल में विभिन्न प्रकार के पशुओं के मांस के अतिरिक्त मछलियां भी आहार बन गईं। फल-फूल भी आहार के रूप में प्रयुक्त थे। मध्यपाषाण काल में गुजरात में लोगों ने एक प्रकार की घास को उत्पन्न करना शुरू कर दिया था। कुछ समय पश्चात् लोगों ने भाण्ड-निर्माण भी शुरू कर दिया था।

मध्यपाषाण काल में मानव ने लघु औजारों का निर्माण शुरू कर दिया था। आधा से पौने (.5-.75 इंच) इंच तक के इन लघु उपकरणों का बाणाग्रों के रूप में उपयोग होता था। इस काल में उपकरण निर्माण के क्षेत्र में एक

CTRUM

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

मध्यपाषाण काल के औजार

ब्लेड: यह एक प्रकार का विशेषीकृत पत्तर होता है। इसकी लम्बाई इसकी चौड़ाई से दुगनी होती है। इनका उपयोग सम्भवतः काटने के लिए किया जाता होगा।

क्रोड: क्रोड साधारणतया आकार में बेलनाकार होता है जिसकी पूरी लंबाई में फ्लूटिंग के निशान होते हैं और इसमें एक सपाट प्लेटफार्म होता है।

नुकीला औजार: नुकीला औजार एक प्रकार का टूटा तिकोना ब्लेड होता है। इसके दोनों सिरे ढलवां तथा धारदार होते हैं। इसके सिरे सरल रेखीय या वक्र रेखीय भी हो सकते हैं।

त्रिकोण: इसमें साधारणतः एक सिरा और एक आधार होता है और सिरे को धारदार बनाया जाता है। इसका उपयोग काटने के लिए किया जाता है या इसे तीर के अग्र भाग में भी लगाया जाता है।

नवचंद्राकार: नवचंद्राकार औजार भी एक तरह का ब्लेड होता है लेकिन इसका एक सिरा वृत्ताकार होता है। यह एक वृत्त के हिस्से से समान मालूम होता है। इनका उपयोग अवतल कटाई के लिए किया जा सकता था या ऐसे दो औजारों को मिलाकर तीर का अग्रभाग तैयार किया जा सकता था।

और महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया और वह यह कि अब कठोर चट्टानों के साथ-साथ मुलायम चट्टानों का उपयोग भी उपकरणों के निर्माण में होने लगा।

इस कालखण्ड में लोगों ने शवाधान की दाह-संस्कार की प्रक्रिया शुरू कर दी थी। उत्खनन के दौरान जो अस्थि-अवशेष प्राप्त हुए हैं, उनमें से कुछ के शीर्ष पूर्व की ओर तथा कुछ के शीर्ष पश्चिम की ओर हैं। शीर्ष के पास से पाषाण उपकरण भी प्राप्त हुए हैं। इन उपकरणों की प्राप्ति के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि शवाधान से सम्बद्ध अनुष्ठान का प्रयोग भी शुरू हो गया था। मानव-अस्थियों के साथ ही-साथ कुत्ते के भी अस्थि-पंजर की प्राप्ति को धार्मिक महत्व के साथ जोड़ा जाता है और ऐसा माना जाता है कि इसी कालखण्ड में पशुपालन को पर्याप्त महत्व प्राप्त होने लगा था।

पुरापाषाण काल तथा नवपाषाण काल का तुलनात्मक अध्ययन

पुरापाषाण काल	नवपाषाण काल
1. अवधि (लगभग) 50,000 ई.पू. से 10,000 ई.पू.	1. अवधि (लगभग) 10,000 ई.पू. से 5,000 अथवा 4,000 ई.पू. भारत के परिप्रेक्ष्य में इसे 10,000 ई.पू. से 8,000 ई.पू. माना जाता है।
2. शिकार अथवा कृषि मुख्यतः खाद्यान्न-संग्रह पर आधारित	2. शिकार अथवा कृषि खाद्यान्न उत्पादन की प्रारंभिक अवस्था
3. स्थायी अथवा अस्थायी जीवन भ्रमणशील अथवा खानाबदोशी जीवन	3. स्थायी अथवा अस्थायी जीवन स्थायी आवासीय जीवन
4. निवास स्थान पर्वतों की गुफाओं एवं वृक्षों पर	4. निवास स्थान स्वयं निर्मित छोटी-छोटी झोपड़ियों में
5. खाद्यान्न कच्चे खाद्यान्न एवं कच्चे मांस का आहार	5. खाद्यान्न पकाए गए मांस एवं खाद्यान्न का आहार
6. शिकारी प्रवृति अथवा पशुपालन आहार के लिए शिकार.	6. शिकारी प्रवृति अथवा पशुपालन पशुपालन की प्रवृति का विकास
7. औजार एवं उपकरण कच्चे उपकरणों का प्रयोग	7. औजार एवं उपकरण परिष्कृत एवं पक्के उपकरणों का प्रयोग
8. वस्त्र एवं परिधान सामान्यतः निर्वस्त्र अथवा नग्न, वृक्षों की छाल एवं पत्तियां अथवा जानवरों की छालों का प्रयोग	8. वस्त्र एवं परिधान फ्लेक्स अथवा ऊन से बने वस्त्र एवं परिधानों का प्रयोग
9. पहिये का प्रयोग पहिये के प्रयोग से अनभिज्ञ	9. पहिये का प्रयोग पहिये का प्रयोग आरंभ
10. धातुओं का प्रयोग जानवरों की हड्डियों एवं पत्थरों से बने उपकरण एवं हथियारों का प्रयोग	10. धातुओं का प्रयोग उपकरण एवं हथियारों को बनाने के लिए धातुओं के प्रयोग का प्रारंभ
11. कला जानवरों के चित्रों का चित्रण	11. कला जानवरों के चित्रों के साथ-साथ मनुष्यों के चित्रों का चित्रण
12. धार्मिक आस्थाएं सूर्य, चांद, नदियों और पर्वतों के प्रति धार्मिक आस्था का उद्भव	12. धार्मिक आस्थाएं इस प्रथा के प्रति और अधिक प्रबलता

पुरापाषाणकालीन एवं मध्यपाषाणकालीन शैल चित्रकला

पुरापाषाणकाल एवं मध्यपाषाणकाल के शैलाश्रयों एवं अन्य प्रस्तर खण्डों पर उत्कीर्ण चित्र इस बात के प्रमाण हैं कि मनुष्य में कलात्मक अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति जन्मना होती है। इन काल खण्डों की कलाकृतियों में न सिर्फ रेखांकन है, अपितु रंगों का भी प्रयोग किया गया है।

पुरापाषाणकाल की शैल चित्रकला के अवशेष भीमबेटका से मिले हैं। 10 वर्ग कि. मी. क्षेत्र के 500 से भी अधिक शैलाश्रयों में इसके अवशेष हैं। इसमें छोटे चित्रों से लेकर 3 मीटर तक के लम्बे चित्र उत्कीर्ण हैं। भैंसा, हाथी बाघ, गेंडा, सूअर आदि पशुओं के चित्र यहां उत्कीर्ण किए गए हैं। और इनमें हरे और गहरे लाल रंगों का प्रयोग किया गया है। इन शैलाश्रयों में मानवाकृतियां भी मिली हैं।

मध्यपाषाणकाल में भीमबेटका के अतिरिक्त *आजमगढ़, प्रतापगढ़, मिर्जापुर* आदि क्षेत्रों में शैलचित्रकला के प्रमाण मिले हैं। इस काल में कुछ नए पशुओं व भावों के चित्र उत्कीर्ण हुए।

पुरा व मध्यपाषाणकालीन शैल चित्रकला से इन कालखण्डों के भौतिक व सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारियां उपलब्ध होती हैं। अधिकांश चित्र शिकारी मानव को दर्शाते हैं। प्रायः उन्हीं पशुओं के चित्र उत्कीर्ण हैं, जिनका शिकार मनुष्य अपनी आवश्यकताओं के लिए करता था। पशुओं के आखेट के अतिरिक्त मछली पकड़ने, खाद्य-संग्रह आदि के चित्र भी हैं। कुछ चित्रों से उस कालखण्ड की शवाधान-पद्धति, यौन-सम्बन्ध, अनुष्ठानादि का भी पता चलता है। इन चित्रों में मनुष्य की 'धार्मिक' प्रवृत्ति के प्राचीनतम प्रमाण भी देखे जा सकते हैं। और इन सबके अतिरिक्त जैसे-जैसे कलात्मक प्रवृत्ति में विकास दिखाई देता है, इस बात की पुष्टि होती जाती है कि मनुष्य का जीवन अधिक स्थायी होने लगा।

नवपाषाण काल

यह पाषाण काल का अन्तिम चरण है और मध्यपाषाण काल के अवसान की निश्चित गणना नहीं हो पाने के कारण नवपाषाण काल की शुरुआत की निश्चित अवधि का निर्धारण दुष्कर हो जाता है। पुरापाषाण काल के उपकरणों के निर्माण की तकनीक, शैली तथा विधि से भिन्नता एव नवीनता होने के कारण इस कालखण्ड को नवपाषाण काल का नाम दिया जाता है।

नवपाषाण काल के भग्नावशेष मैसूर (कर्नाटक) तथा हैदराबाद के राज्यों में, नर्मदा तथा गोदावरी नदियों की घाटियों में, करनूल के क्षेत्र में, साबरमती नदी की घाटी में, मुंबई, कश्मीर, सिन्ध तथा मिर्जापुर (उ.प्र.) में प्राप्त हुए हैं। नवपाषाण काल में आकर जलवायु मानव के लिए अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल हो गयी थी। अनुकूल जलवायु में जनसंख्या में वृद्धि के साथ-साथ मानव की विवेकशीलता में भी वृद्धि हुई।

इस कालखण्ड में आकर मनुष्य की प्रकृति पर पूर्ण निर्भरता टूटने लगी और अपने विकास के लिए मानव ने अपनी विवेकशीलता का उपयोग प्रारंभ कर दिया। इस काल में भी अधिकांश औजार पाषाणों के ही बने होते थे, परन्तु औजारों का स्वरूप परिष्कृत एवं सुघड़ होता था। इसी काल में पहिये और घिरी का आविष्कार हुआ। नवपाषाण काल में सबसे ब परिवर्तन यह हुआ कि अब आजीविका में सहयोग देने व

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

Bronze age → कांस्य युग

वस्तुओं का निर्माण लकड़ी, हाथी दांत तथा विभिन्न प्रकार के पशुओं की
अस्थियों से भी होने लगा। इस काल में धनुष-बाण, बर्छी, भाले, तलवार,
चाक, कुल्हाड़ी, हंसिया, हल, पहिया, घिरनी, पीढ़ी, डोंगी, तकली, करघे आदि
के निर्माण के प्रमाण मिले हैं।

नवपाषाण काल में मानव ने अनेक प्रकार के आविष्कारों को जन्म दिया
तथा उसके माध्यम से अपनी विकास-गति को बढ़ाया। इस काल में ही मानव
ने सर्वप्रथम कृषि-कार्य की शुरुआत की। उत्खनन में प्राप्त एक पाषाण-शिला
पर दो बैलों की सहायता से हल चलाते हुए एक कृषक का चित्र उपलब्ध
हुआ है, जिसके आधार पर यह अनुमान लगाया जा रहा है कि उस काल
में बैल और हल की सहायता से कृषि-कार्य सम्पादित होते थे। परन्तु,
दुर्भाग्यवश अब तक हल अथवा उसके अन्य अवशेषों की प्राप्ति नहीं हुई
है। इस आधार पर यह भी अनुमान लगाया जा रहा है कि हलों का निर्माण
काष्ठ से हुआ होगा और कालान्तर में वे पूर्ण रूप से नष्ट हो गए होंगे।
इस कालखण्ड में गेहूं, जौ, मक्का, बाजरा, विभिन्न प्रकार के खाद्यान्नों का
उत्पादन आरम्भ हो चुका था।

इस काल में कृषि के साथ-साथ पशुपालन का भी विकास हुआ। गाय,
बैल, भैंस, भेड़, बकरी, बिल्ली, कुत्ता, घोड़ा आदि पालतू पशु थे। कृषि और
पशुपालन के विकास के बाद मानव-जीवन में स्थिरता आ गयी और उत्पादन
में भी वृद्धि होने लगी। इसके बाद मानव ने भण्डारण के लिए मृत्तिका-पात्रों
का निर्माण शुरू कर दिया। नवपाषाण काल में ही मानव ने सर्वप्रथम पौधों
के रेशों तथा ऊन के धागों को कातना और उन्हें बुनकर वस्त्र-निर्माण करना
शुरू किया। उत्खननों से प्राप्त तकली तथा करघे इसी का प्रमाण प्रस्तुत
करते हैं।

जीवन में स्थायित्व आ जाने के बाद नवपाषाण काल में मानव ने
कन्दराओं तथा पशु-चर्म से निर्मित अस्थायी शिविरों में रहने की आदत का
त्याग करना शुरू कर दिया। उत्खननों से प्राप्त उपकरणों से यह ज्ञात होता
है कि नवपाषाण काल में मानव ने गृह-निर्माण की कला भी विकसित कर
ली थी। इस काल में बनने वाली झोपड़ियों की दीवारें लट्ठों तथा नरकुलों
की बनी होती थीं, जिन पर मिट्टी का लेप लगा दिया जाता था। झोपड़ियों
की छतें लकड़ी, पत्ती, छाल आदि की बनी होती थीं तथा फर्श कच्ची मिट्टी
का बना होता था।

नवपाषाण काल में शवाधान की विभिन्न पद्धतियां प्रचलित थीं। इस
कालखण्ड में सामान्यतः शवों को गाड़ दिया जाता था। इस काल में शवों
को गाड़ने के लिए कब्रिस्तान का भी निर्माण हो चुका था। इस काल की
कुछ बस्तियों में शवों को जलाने की प्रथा भी प्रचलित थी।

दीर्घावधिक शोधों तथा अनुसंधानों के बाद यह मत निर्विवाद रूप से
स्थापित हो चुका है कि नवपाषाण काल में लोगों ने अग्नि का प्रयोग शुरू
कर दिया था। उत्खनन के दौरान अनेक पाक-भाण्ड प्राप्त हुए हैं, जिनसे
अग्नि का अस्तित्व स्वतः सिद्ध हो जाता है।

नवपाषाण काल में मानव का धार्मिक विकास भी शुरू हो गया था।
इस काल में ही पहली बार मातृदेवी की पूजा स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती
है। कुछ विद्वानों की यह भी धारणा है कि बलि-प्रथा की शुरुआत भी इस
युग में हो गई थी। कुछ भवनों को मंदिरों के रूप में माना जा रहा है, किन्तु
यह पूर्ण रूप से अनुमान पर ही आधारित है।

ताम्रपाषाण काल (chalcolithic Period)

नवपाषाण काल की समाप्ति के दौर में मानव ने 'ताम्र' धातु का उपयोग
सीख लिया था। पाषाण के साथ-साथ ताम्र का उपयोग करने के कारण
इस कालखण्ड को ताम्रपाषाण काल कहा जाता है। विस्तृत रूप से देखा
जाए तो प्राकहड़प्पा और हड़प्पा सभ्यता भी ताम्रपाषाणकालीन ही प्रतीत
होती हैं. हालांकि हड़प्पा निवासी कांस्य का उपयोग भी जानते थे, इसलिए
उसे सामान्य तौर पर कांस्ययुगीन सभ्यता कह दिया जाता है। स्थूल रूप
से 2000 ई.पू. से 800 ई.पू. के बीच के कालखण्ड को भारत के संदर्भ में
ताम्रपाषाण काल कहा जा सकता है।

ई.पू. पहली सदी के पूर्वार्द्ध और उसके पूर्व के मध्य भारत के लघु
पाषाणिक फलक उद्योग, जिनमें सिन्धु घाटी और बलूचिस्तान के चर्ट फलकों
से मिलते-जुलते समानान्तर पार्श्वों वाले फलक सम्मिलित हैं और मध्य नर्मदा
के तट पर नेवद्राटोली में ताम्रपाषाणिक स्थलों पर पाए गए चपटे ताम्र कुठारों
से यह आभास मिलता है कि सौराष्ट्र के सैंधव स्थल और मध्य भारत के
बीच विशेष प्रकार का संबंध रहा होगा।

वस्तुतः भारत में जिस समय सैंधव सभ्यता अपनी चमक खो रही थी
उस समय कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में ताम्र के उपयोग के साथ कुछ कृषक बस्तियां
अपना विकास तीव्र गति से कर रही थीं। इन बस्तियों ने ताम्र धातु का उपयोग
करना तो शुरू कर दिया था, परन्तु अभी भी व्यापक पैमाने पर पाषाण का
उपयोग होता था। इसलिए, इन्हें ताम्रपाषाणिक बस्तियों के रूप में जाना
जाता है। अलग-अलग अनेक क्षेत्रों में ताम्रपाषाण का उपयोग करने वाली
अनेक बस्तियां एक ही समय अस्तित्व में थीं, किन्तु इन बस्तियों में स्थानीय
प्रवृत्तियां हावी थीं। सैंधव सभ्यता के विभिन्न स्थलों की भांति इनमें आपस
में कोई बहुत बड़ी समानता नहीं थी, इसलिए अलग-अलग बस्तियों को
अलग-अलग नामों से जाना जाता है।

नर्मदा घाटी में सबसे ऊंचे तल पर 400 गज से अधिक के क्षेत्र में फैले
नेवदा टोली में दूर-दूर तक खुदाइयां की गई हैं। इस ताम्रपाषाणिक बस्ती
के झोपड़े लकड़ी के खम्भों एवं बांस की चिकों से बने थे। फर्श मिट्टी और
गोबर के थे तथा उनके ऊपर चूने का पतला-सा लेप था। इस स्थल पर
मिले उपकरणों में ताम्र के चपटे कुठार, मछली पकड़ने के कांटे, पिनें और
अंगूठियां तथा बहुत-से लघु पाषाण-फलक हैं। यहां का पाषाण उद्योग गोमेद
या कैलसिडोनी का माना जाता है। नेवदाटोली के मृदभाण्डों में पत्थर के
मर्तबान (जार), हल्की पीली मिट्टी के छोटे प्याले, पीली मिट्टी के ही बने कलश
मिले हैं। मृदभाण्डों पर ज्यामितीय नमूने, पशुओं के नमूने और नृत्य की अवस्था
में मानव आकृतियां प्राप्त हुई हैं।

मालवा तथा मध्य भारत के अन्य क्षेत्रों में भी इसी प्रकार के ताम्र
पाषाणिक स्थल खोजे तथा खोदे गए हैं। यहां एक सरल लघु पाषाणिक
उद्योग और स्थानीय विशिष्टता के साथ मृदभाण्ड पाए गए हैं। इन अवशेषों
को ई.पू. की दूसरी या पहली सहस्राब्दि का माना जाता है। ताम्रपाषाणिक
संस्कृतियों का विस्तार मालवा से पूर्व की ओर अनेक स्थलों में है। नेवदाटोली
से लगभग 200 मील उत्तर-पूर्व की ओर बेतवा की एक सहायक नदी के
तट पर एरन में और नर्मदा के तट पर त्रिपुरी में खुदाइयों के दौरान उत्तर
कालीन ताम्रपाषाणिक बस्तियों के अवशेष मिले हैं। बर्दवान जिले में राजार
ढीबी तथा समीपवर्ती बीरभूम जिले में महिषादल से पाषाण फलक उद्योग,
घर्षित पाषाण कुठार, ताम्र वस्तुएं (मछली पकड़ने के कांटे विशेष रूप से),
चित्रित लाल और काले तथा लाल मृदभाण्ड और नालीदार टोंटी वाले कटोरों
के साथ-साथ मर्तबान (जार) भी प्राप्त हुए हैं।

भारत में पश्चिम, पूर्व एवं मध्यभागीय क्षेत्र में विस्तृत इन ताम्रपाषाणिक
बस्तियों में सबसे बड़ी सामान्य विशेषता यह है कि इनमें से अधिकांश ग्रामीण
बस्तियां हैं। इन बस्तियों में आजीविका का आधार कृषि ही था। इनका निवास
गोलाकार अथवा आयताकार झोपड़ियों में ही था। सामान्यतः इन बस्तियों
के लोग लाल आधार पर काले रंग के चित्रित मृदभाण्डों का प्रयोग करते थे।

दक्षिण भारत में भी अनेक ताम्रपाषाणिक स्थल प्राप्त हुए हैं। आन्ध्र प्रदेश
में कुरनूल में विशिष्ट प्रकार के चित्रित लाल भाण्ड और नालीदार टोंटी वाले
प्याले मिले हैं। कृष्णा जिले में केसरपल्ली में तथा सुदूर दक्षिण में पाण्डिचेरी
में भी ताम्रपाषाणिक संस्कृति के अवशेष मिले हैं। लाल मृदभाण्डों की प्रधानता,
पात्रों के स्वरूपों और ताम्र अथवा कांस्य से भिन्न अन्य धातुओं के वस्तुओं
के प्राप्त नहीं होने से ऐसा अनुमान होता है कि ये स्थल एक ऐसी सांस्कृतिक
अवस्था का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो निश्चित रूप से लोहे के प्रयोग के
पूर्व की हैं।

मध्य प्रदेश में चम्बल नदी के क्षेत्र में स्थित कयथा संस्कृति ताम्रपाषाणिक
संस्कृतियों में प्राचीनतम थी। इसी की समकालीन राजस्थान में उदयपुर जि
के समीप अहर अथवा बनास संस्कृति अस्तित्व में थी। राजस्थान में ही घग
की घाटी में सोठी संस्कृति अस्तित्व में थी। नर्मदा नदी के तट पर मा
क्षेत्र में मालवा संस्कृति थी। नेवदाटोली और माहेश्वर का सम्बंध मा
संस्कृति से ही है। महाराष्ट्र में एक अन्य ताम्रपाषाणकालीन सवालदा सं
भी अस्तित्व में थी। महाराष्ट्र में ही जोरवे (जोब) संस्कृति भी विकसि
जहां के दायमाबाद, इनामगांव और प्रकाश प्रमुख स्थल थे। गुज
प्रभासपत्तन और रंगपुर में भी ताम्रपाषाणिक संस्कृति के साक्ष्य मिले हैं
में चिरांद और सोनपुर, उत्तर प्रदेश में सोहगौरा तथा बंगाल में म
में भी ताम्रपाषाणिक संस्कृति के साक्ष्य मिले हैं।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

पुनरीक्षण अभ्यास

प्रश्न	उत्तर
1. पाषाणकालीन सभ्यता तथा संस्कृति का अन्वेषण 1862 ई. में सर्वप्रथम किसने किया?	1. बूरा फुट
2. हिमावर्तन तथा अतिवृष्टि किस काल की जलवायु की प्रमुख विशेषता थी?	2. पुरापाषाण काल
3. पुरापाषाण काल को किस अन्य नाम से भी जाना जाता है?	3. आखेट युग
4. कठोर चट्टानों के साथ-साथ मुलायम चट्टानों के भी उपकरणों का निर्माण किस काल में होने लगा?	4. मध्यपाषाण काल
5. धूल और हल की सहायता से कृषि कार्य की शुरूआत किस काल में हुई?	5. नवपाषाण काल
6. अग्नि का प्रयोग मानव ने किस काल में करना शुरू किया?	6. नवपाषाण काल
7. भारत के किस स्थल से नवपाषाण काल की संस्कृति के प्राचीनतम साक्ष्य प्राप्त हुए हैं?	7. मेहरगढ
8. ताम्रपाषाण काल की किस संस्कृति से लिंग-पूजन के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं?	8. जोब संस्कृति
9. प्रागैतिहासिक काल में भारत के किस भाग के ग्रामों में लाल मृत्तिका पात्र के उपयोग की प्रधानता थी?	9. उत्तरी भाग
10. प्रागैतिहासिक काल में भारत के किस भाग के ग्रामों की विशेषता महिषचर्या थी?	10. दक्षिणी भाग
11. भारत में स्थायी संस्कृति के प्राचीनतम अवशेष बलूचिस्तान और सिंध से प्राप्त हुए हैं। ये किस काल के हैं?	11. ई.पू. चौथी सदी
12. पुरापाषाण काल के लोगों को किस श्रेणी का समझा जाता है?	12. नेग्रीटो
13. मध्यपाषाण काल का सर्वाधिक प्रमुख लक्षण क्या था?	13. लघु औजार
14. नवपाषाण काल के किस स्थल से पात्रों में रखकर शवों को दबाए जाने का अवशेष प्राप्त हुआ है?	14. आदिचनल्लूर
15. किस ताम्रपाषाणिक संस्कृति के स्थल से रेखाओं की सजावट और एक शिकारी पक्षी की आकृति मिली है?	15. नाल
16. व्यापक उत्खनन के बाद मध्यपाषाण काल की मानव-अस्थियां किस क्षेत्र से प्राप्त हुई हैं?	16. गुजरात
17. शवाधान की दाह-संस्कार की प्रक्रिया किस कालखण्ड में शुरू हुई?	17. मध्यपाषाण काल
18. विकसित कृषि और स्थायी ग्राम का विकास भारत में किस समय हुआ?	18. ई.पू. पांचवीं सदी
19. भूमध्यसागरीय और एल्पीनी आरमीनी लोगों ने भारतीयों को कौन-सी भाषा दी?	19. द्रविड़ भाषाएं
20. पंजाब की एक छोटी-सी नदी के नाम पर किस ताम्रपाषाणिक संस्कृति का नामकरण किया गया था?	20. सोन संस्कृति

3. सिंधु घाटी सभ्यता

बीसवीं सदी की शुरूआत तक इतिहासवेत्ताओं की यह धारणा थी कि वैदिक सभ्यता भारत की प्राचीनतम सभ्यता है। वैदिक सभ्यता का प्रमाण केवल साहित्यिक स्रोतों से प्राप्य था, इसलिए भारतीय सभ्यता के पुरातात्त्विक स्रोतों की प्राप्ति के लिए नियमित प्रयास चल रहे थे। बीसवीं सदी के तीसरे दशक में दयाराम साहनी और राखालदास बनर्जी ने क्रमशः पंजाब के माण्टोगोमरी जिले के समीप स्थित हड़प्पा और सिंध के मोहनजोदड़ो के प्राचीन स्थलों से पुरातात्त्विक वस्तुओं को प्राप्त कर यह साबित किया कि वैदिक सभ्यता से पूर्व भी भारत में एक अन्य सभ्यता विद्यमान थी। हड़प्पा में ही सबसे पहले खुदाई किए जाने और आरंभिक स्थलों में से अधिकांश के सिंधु नदी के किनारे अवस्थित होने के कारण इसे 'हड़प्पा सभ्यता' और 'सिंधुघाटी सभ्यता' अथवा 'सैंधव सभ्यता' का नाम दिया गया।

'हड़प्पा सभ्यता' के संबंध में प्रारंभिक जानकारी 1826 ई. में चार्ल्स मैसन ने दी थी, जब उन्होंने हड़प्पा के टीले का उल्लेख किया था। भारत में पुरातत्त्व के जनक माने जाने वाले जनरल कनिंघम ने 1853 ई. तथा 1873 में दो बार हड़प्पा का सर्वेक्षण कराया तथा कुछ पुरातात्त्विक महत्त्व की तुएं भी प्राप्त कीं। 1912 ई. में रायल एशियाटिक सोसायटी द्वारा प्रकाशित का में जे.एफ. फ्लीट ने पुरातात्त्विक लेखों से संबद्ध एक नपरक लेख प्रस्तुत किया। सर जॉन मार्शल के पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग निदेशकत्त्व काल में रायबहादुर दयाराम साहनी ने 1921 ई. में हड़प्पा षण किया और 1923-24 ई. तथा 1924-25 ई. में दो बार उत्खनन। इसके बाद 1926 ई. से लेकर 1934 ई. तक माधव स्वरूप वत्स में हड़प्पा की खुदाई की गई। हड़प्पा की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण खुदाई 1946 ई. में सर मार्टीमर ह्वीलर के नेतृत्व में हुई।

हड़प्पा से 640 किलोमीटर की दूरी पर स्थित मोहनजोदड़ो की खुदाई के बाद यह पूर्णतः स्पष्ट हो गया कि वैदिक सभ्यता के पूर्व भी भारत में एक अत्यंत विकसित सभ्यता थी। मोहनजोदड़ो की खोज 1922 ई. में राखालदास बनर्जी ने की और यहां से पुरातात्त्विक महत्त्व की अनेक वस्तुओं को प्राप्त कर पुरातत्त्ववेत्ताओं का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। 1922 ई. से 1930 ई. के बीच सर जॉन मार्शल के नेतृत्व में मोहनजोदड़ो की नियमित खुदाई की गई। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो से अनेक ऐसे महत्त्वपूर्ण साक्ष्य प्राप्त हुए, जिसमें पर्याप्त समानता विद्यमान थी और इन खुदाइयों ने अन्य स्थलों की खुदाइयों के लिए भी पुरातत्त्ववेत्ताओं को प्रेरित किया। 1931 ई. में एन.जी. मजूमदार ने चन्हूदड़ो की खोज की। चन्हूदड़ो, मोहनजोदड़ो से 128 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है और इसमें बहुत-सी चीजें मोहनजोदड़ो से मिलती-जुलती हैं। पिगट ने तो यहां तक कहा है कि मोहनजोदड़ो और चन्हूदड़ो एक ही विस्तृत साम्राज्य की जुड़वां राजधानियां थीं। ऊपर उल्लिखित नामों के अतिरिक्त के.एन. दीक्षित, अर्नेस्ट मैके, आरेल स्टीन, बी.बी. लाल, बी.के. थापर आदि ने भी इस वैदिकपूर्व सभ्यता की खोज में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

'सिंधु घाटी की सभ्यता' अथवा 'हड़प्पा-सभ्यता' 2500 ई.पू. में अपनी पूर्ण विकसित अवस्था में थी। साहित्यिक स्रोतों के आधार पर तथा पुरातात्त्विक स्रोतों से उनकी तुलना के आधार पर वैदिककाल की तिथि 1500 ई.पू. से 600 ई.पू. के बीच निर्धारित होती है। इस दृष्टि से निश्चित रूप से हड़प्पा सभ्यता भारत की प्राचीनतम सभ्यता थी।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

प्रायः ऐसा माना जाता है कि सिंधुघाटी की सभ्यता कांस्ययुगीन सभ्यता थी। परन्तु, इसकी निश्चित कालावधि का निर्धारण अत्यन्त दुष्कर है। मोहनजोदड़ो की अब तक की खुदाई से निर्माण एवं पुनर्निर्माण के सात स्तर प्राप्त हुए हैं, जिसके आधार पर यह माना जा रहा है कि सिंधव-सभ्यता को अस्तित्व कम से कम 1000 वर्षों तक तो अवश्य ही रहा होगा। सिंधव सभ्यता की खोज से संबंद्ध विभिन्न विद्वान तथा बाद के शोधकर्त्ताओं ने इसके अस्तित्व की विभिन्न तिथियां निर्धारित की हैं। जॉन मार्शल की तिथि सिंधव सभ्यता को सर्वाधिक प्राचीन बताती है। उनके अनुसार, सिंधव सभ्यता का अस्तित्व 3250 ई.पू. से 2750 ई.पू. के बीच विद्यमान था। इसके बाद अर्नेस्ट मैके इस सभ्यता का अस्तित्व 2800 ई.पू. से 2500 ई.पू. के बीच निर्धारित करते हैं। माधवस्वरूप वत्स इस सभ्यता को 2700 ई.पू. से 2500 ई.पू. के बीच का मानते हैं, जबकि सी.जे. गैड 2350 ई. से 1700 ई.पू. के बीच का मानते हैं। सिंधु घाटी सभ्यता को सर्वाधिक प्रामाणिक काल-निर्धारण मार्टीमर ह्वीलर का माना जाता है। इन्होंने सिंधु घाटी सभ्यता को 2500 ई.पू. से 1500 ई.पू. के बीच का माना है। इण्डस वैली सिविलाइजेशन एण्ड बियाण्ड के अनुसार, बाद में ह्वीलर ने सिंधव सभ्यता को 1700 ई.पू. तक ही मान लिया। ह्वीलर ने सैंधव सभ्यता का काल-निर्धारण पश्चिम एशिया से प्राप्त मुहरों और ऋग्वेद में वर्णित साक्ष्यों के आधार पर किया। ह्वीलर ने ऋग्वैदिक काल के आधार पर सैंधव सभ्यता की अंतिम तिथि तथा मेसोपोटामिया के साथ व्यापार के आधार पर आरंभिक तिथि का निर्धारण किया।

सिंधव-सभ्यता के प्रमुख स्थलों--मोहनजोदड़ो, कोटदीजी, कालीबंगा, लोथल, रोजदी, सुरकोतदा तथा बाड़ा से जो रेडियो कार्बन तिथियां प्राप्त की गई हैं, उनके आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि यह सभ्यता 2300 ई.पू. से लेकर 1700 ई.पू. के बीच अपने अस्तित्व में थी। इन साक्ष्यों के आधार पर 2300 ई.पू. से 2000 ई.पू. के बीच का काल सैंधव सभ्यता की पराकाष्ठा का काल था।

सैंधव सभ्यता सिंधु नदी की घाटियों में ही सीमित नहीं थी। इस सभ्यता के स्थल उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में दूर-दूर तक फैले थे। पाकिस्तान के बलूचिस्तान, सिंध तथा पंजाब के प्रांतों में सैंधव-सभ्यता के अनेक पुरातात्त्विक स्थलों की खोज की जा चुकी है। दक्षिणी बलूचिस्तान में सुतकागेंडोर, सोत्काकोह तथा बालाकोट सैंधव-सभ्यता के प्रमुख स्थल हैं। सिंध प्रांत में मोहनजोदड़ो तथा चन्हूदड़ो के अतिरिक्त कोटदीजी, आमरी तथा जुदेड़जोदड़ो प्रमुख सैंधव-स्थल हैं। पंजाब में हड़प्पा के अतिरिक्त डेरा इस्माइल खान, रहमान ढेरी, सराय खोला, जलीलपुर, रोपड़, कोटला निहंग तथा संघोल; हरियाणा में बनवाली, राखीगढ़ी तथा मित्ताथल; राजस्थान में कालीबंगा; गुजरात में रंगपुर, लोथल, देसलपुर, भगतराव, रोजदी, सुरकोतडा, मालवण; जम्मू एवं कश्मीर में माण्डा; उत्तर प्रदेश में आलमगीरपुर, बड़ागाव और हुलास आदि सैंधव-सभ्यता के प्रमुख स्थल हैं।

सैंधव-सभ्यता की उत्तरी और दक्षिणी सीमा के बीच 1400 किलोमीटर की दूरी है, जबकि पूर्वी और पश्चिमी सीमा के बीच लगभग 1600 किलोमीटर की दूरी है। पाकिस्तान के पंजाब प्रांत में स्थित रहमान ढेरी उत्तरी, गुजरात में स्थित भगतराव दक्षिणी, उत्तर प्रदेश में स्थित आलमगीरपुर पूर्वी तथा बलूचिस्तान में स्थित सुतकागेंडोर पश्चिमी सीमा थी सैंधव सभ्यता की। सम्पूर्ण सैंधव सभ्यता का क्षेत्रफल 12 लाख 15 हजार वर्ग किलोमीटर था। तत्कालीन विश्व की कोई अन्य सभ्यता इतनी अधिक विस्तृत नहीं थी। क्षेत्रफल की दृष्टि से समकालीन मिस्र और मेसोपोटामिया की सभ्यताएं अपेक्षाकृत छोटी थीं।

आगे के वर्णन से स्पष्ट होगा कि सिंधु सभ्यता एक उच्चकोटिक और नियोजित सभ्यता थी। परन्तु, यह दुर्भाग्य है कि अभी तक इस सभ्यता लिपियों को पढा नहीं जा सका है और इसकी उत्पत्ति तथा विकास संबंध में अनेक तथ्य अभी भी पृष्ठभूमि में ही बने हुए हैं। साहित्यिक स्रोतों अभाव में इसकी उत्पत्ति और विकास के संबंध में विद्वानों के बीच विविधता स्थापित है। अभी तक जो भी निष्कर्ष निकाले जा रहे हैं, वे ात्त्विक स्रोतों के आधार पर किए गए अनुमानों पर ही आधारित हैं।

विस्तार

1921 ई. में सर जॉन मार्शल के निर्देश पर दयाराम साहनी द्वारा की गई हड़प्पा की खोज के बाद से अब तक सिंधु सभ्यता का क्षेत्र बहुत ही अधिक विस्तृत हो गया है। इस सभ्यता का विस्तार पंजाब, सिंध, राजस्थान, हरियाणा, गुजरात, बलूचिस्तान, जम्मू और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सीमावर्ती भागों में था। उत्तर में मांदा (जम्मू), दक्षिण में नर्मदा का मुहाना, पश्चिम में मकरान समुद्र तट (बलूचिस्तान), उत्तर पूर्व में मेरठ (उत्तर प्रदेश) और पूर्व में आलमगीरपुर इस सभ्यता की चौहद्दी थी। पश्चिम में सुतकागेंडोर से पूर्व में आलमगीरपुर की लंबाई 1600 किलोमीटर है, जबकि उत्तरी छोर पर स्थित रहमान ढेरी से दक्षिणी छोर पर स्थित भगतराव तक की लंबाई 1400 किलोमीटर है। सिंधु सभ्यता का क्षेत्र त्रिभुजाकार है तथा इसका क्षेत्रफल 12,99,600 वर्ग किलोमीटर है।

कालक्रम

सैंधव सभ्यता 2500 ई.पू. के आसपास अपनी पूर्ण विकसित अवस्था में प्रकट होती है। पुरातत्त्ववेत्ताओं ने अनुमानों के आधार पर सिंधु सभ्यता का काल निर्धारण ईसा से लगभग चार हजार वर्ष पूर्व किया गया है। किंतु, वैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर यह निश्चित किया गया है कि सिंधु सभ्यता 2300 ई.पू. से 1700 ई.पू. के बीच अपने मूल अस्तित्व में विद्यमान थी।

सैंधव निवासी

सैंधव सभ्यता की खुदाई से भिन्न-भिन्न जातियों के अस्थि-पंजर प्राप्त होते हैं। इनमें प्रोटो-आस्ट्रलयाड (काकेशियन), भूमध्यसागरीय, मंगोलियन तथा अल्पाइन चार जातियों के अस्थि-पंजर हैं।

नगर निर्माण योजना

भारतीय सभ्यता के इतिहास में पहली बार सिंधु सभ्यता में ही नगरों का व्यवस्थित रूप दृष्टिगत होता है। मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, कालीबंगा, बनवाली, धौलावीरा, लोथल आदि स्थलों के उत्खननों के पश्चात् सैंधव सभ्यता के नगरों की निर्माण योजना पर प्रकाश पड़ता है। सैंधव सभ्यता के विस्तृत साम्राज्य की दो प्रमुख राजधानियां ज्ञात होती हैं--रावी के तट पर हड़प्पा तथा सिंधु के तट पर मोहनजोदड़ो। उत्खनन के उपरांत इन नगरों का परिमाप उत्तर-दक्षिण में 400 से 500 गज तथा पूर्व-पश्चिम में 200 से 300 गज ज्ञात होता है। ये नगर सुदृढ़ रक्षा-प्राचीर से आवृत्त थे। इस प्राचीर का आधार 25 फीट चौड़ा था। शीर्ष भाग मात्र 4 फीट चौड़ा था।

सुरक्षा प्राचीरों के अंतःभाग में व्यवस्थित रूप से नगर को बसाया गया था। संपूर्ण नगर वर्गाकार परिवहन व्यवस्था से जुड़ा था। राजमार्ग एक दूसरे को समकोण पर काटते थे, जिनसे नगर के विभिन्न खण्डों का निर्माण हुआ। प्रमुख राजमार्ग 33 फीट तक चौड़े थे, सामान्य सड़कें 9 से 12 फीट तक चौड़ी थीं, जबकि गलियां 4 फीट तक चौड़ी थीं। किसी भी सड़क का निर्माण ईंटों से नहीं हुआ है। सड़कों के बीच बनी चौड़ी नालियां पक्की ईंटों से ढकी हैं।

नगरों के भवन या आवासगृह सीधी रेखाओं में बने हैं, जिनसे किसी भी मार्ग पर अतिक्रमण नहीं हुआ। दो गृहों के मध्य दीवार उभयनिष्ठ होती थी, किन्तु कहीं-कहीं दो गृहों के मध्य 1 फीट चौड़ी गली भी है। सुरक्षा की दृष्टि से इनके प्रवेश द्वार गलियों की ओर से थे। दीवारें मुख्य मार्गों के किनारे 18 फीट तथा गलियों के किनारे 25 फीट तक ऊंची प्राप्त होती हैं। प्रवेश द्वार काष्ठ का ही होता था, जिनकी औसत ऊंचाई 3.5 फीट तथा ऊंचाई 7 फीट होती थी। सार्वजनिक भवनों के प्रवेश द्वार 28 फीट तक चौड़े थे।

सैंधव सभ्यता में स्वच्छता पर जितना ध्यान दिया गया था, उतना समकालीन किसी सभ्यता में नहीं दिया गया था। प्रायः प्रत्येक मकान कुंओं का निर्माण किया जाता था, जिनका व्यास 3 फीट से 2 फीट प्राप्त होता है। जल-निस्तरण के लिए यहां की गई नालियों की व्यव अद्वितीय थी। प्रत्येक सड़क एवं नाली के बीच एक नाली होती थी, जो ईंटों की बनाई जाती थी। 1.5 फीट चौड़ी नालियां प्राप्त हुई हैं, ज

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

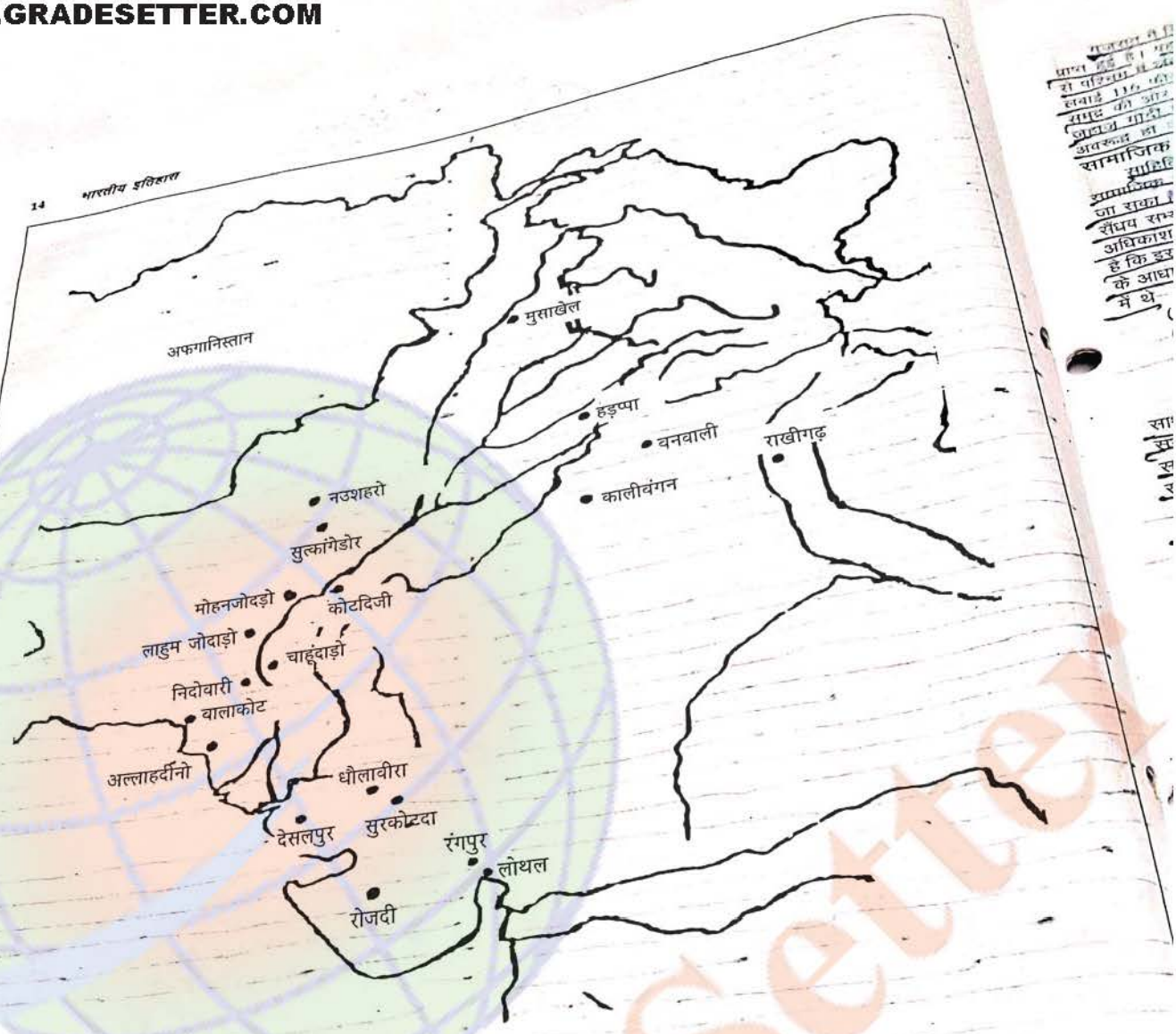

सिंधुघाटी सभ्यता

से ढकी हैं। नालियों की सफाई के लिए स्थान-स्थान पर उनमें गड्ढा बनाकर उसे ढका जाता था, जिससे पानी का प्रवाह बन्द न हो तथा कूड़े की सफाई हो सके।

मोहनजोदड़ो से 20 स्तम्भों पर स्थित एक विशाल भवन प्राप्त हुआ है। यह भवन 85 फीट के वर्ग पर निर्मित है, जिसमें 20 स्तम्भ 5-5 की पंक्तियों में बने हैं। इसमें स्तम्भों की रचना ईंटों से चौकोर की गई है तथा चारों ओर बीच में सीढ़ियां बनी हैं।

मोहनजोदड़ो से ही एक विशाल स्नानागार भी प्राप्त हुआ है। यह स्नानागार 39 फीट लंबा, 23 फीट चौड़ा एवं 8 फीट गहरा है। इस स्नानागार के चारों ओर विशाल आयताकार लघु कक्ष एवं बरामदे बने हैं। इसके स ही एक कूप है, जिससे स्नानागार में स्वच्छ जल की आपूर्ति होती स्नानागार का निर्माण चारों ओर तीन संयुक्त दीवारों से किया गया है। के अंतःभाग में 1 इंच मोटा अलकतरे का लेप है।

हड़प्पा और मोहनजोदड़ो दोनों ही स्थल प्रमुख व्यापारिक केंद्र में स्थापित थे। इन स्थलों से अन्न सुरक्षित रखने के लिए विशाल ध प्राप्त हुए हैं। ये धान्यागार 150 फीट की लंबाई और 75 फीट क के आयात पर बने हैं। इनमें 27 कोष्ठागार ईंटों से बने हैं, जिस प्रकाश की उत्तम व्यवस्था थी।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

गुजरात में स्थित लोथल से समुद्री व्यापार के लिए निर्मित कृत्रिम गोदी प्राप्त हुई है। यह गोदी एक विषमभुज चतुर्भुज की भांति थी, जिसकी पूर्व से पश्चिम की लंबाई 710 फीट, उत्तर की लंबाई 124 फीट तथा दक्षिण की लंबाई 116 फीट थी। यह गोदी 14 फीट ऊंची दीवार से बनी है, जिसमें समुद्र की ओर प्रवेश द्वार पर एक नीची दीवार थी, जिससे ज्वार के साथ जहाज गोदी में आ जाता था। किन्तु, ज्वार-भाटे के समय उस दीवार से अवरुद्ध हो जाता था।

सामाजिक जीवन

सामाजिक स्रोतों की अनुपलब्धता के कारण सैंधव सभ्यता के सामाजिक जीवन के संबंध में कोई स्पष्टतापूर्ण चित्र स्थापित नहीं किया जा सका है। पुरातात्त्विक स्रोतों के आधार पर अनुमान लगाया जाता है कि सैंधव सभ्यता में समाज का आधार परिवार ही रहा होगा। खुदाई में प्राप्त अधिकांश मूर्तियों पर नारी आकृति के अंकन के आधार पर यह कहा जाता है कि इस सभ्यता का समाज नारी-प्रधान था। विभिन्न प्रकार के प्राप्त अवशेषों के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि समाज में चार वर्ग अस्तित्व में थे-

(i) विद्वान वर्ग
(ii) योद्धा वर्ग
(iii) व्यापारी वर्ग
(iv) शिल्पकार एवं श्रमिक वर्ग

हड़प्पा की खुदाई से प्राप्त अवशेषों में विशाल तथा लघु भवनों के साथ-साथ मिलने के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि सैंधव सभ्यता में समाज में अमीर-गरीब का कोई स्पष्ट भेदभाव नहीं था। सैंधव सभ्यता के निवासी शाकाहारी तथा मांसाहारी दोनों ही श्रेणी के थे। सैंधव सभ्यता में पुरुष और नारी दोनों ही आभूषण-प्रिय थे।

सैंधव लोग आमोद-प्रमोद के विशेष प्रेमी थे। पासा इस काल का प्रमुख खेल था। नर्तकी की मूर्ति के आधार पर ही यह अनुमान किया जाता है कि नृत्य भी इस काल में मनोरंजन का प्रिय साधन रहा होगा। सैंधव लोग शिकार में भी रूचि रखते थे। सैंधव निवासी माप-तौल के लिए घनाकार बाटों का प्रयोग करते थे। खुदाई से प्राप्त अवशेषों में तराजू भी है। सैंधव लोगों को दशमलव पद्धति की भी जानकारी थी।

विभिन्न सैंधव स्थलों के उत्खनन में बहुत बड़ी मात्रा में अस्त्र-शस्त्र, औजारों व हथियारों के अनेक नमूने मिले हैं। शस्त्रास्त्रों का निर्माण सामान्यतः ताम्र एवं कांस्य से होता था। युद्ध संबंधी उपकरणों के साधारण कोटि के होने के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि सैंधव निवासी भौतिकतावादी थे। वे आराम-पसंद थे और अनावश्यक परिश्रम नहीं करना चाहते थे। वे शांतिप्रिय थे, क्योंकि इनके द्वारा किसी भी प्रकार के अभियान का प्रमाण नहीं मिलता।

आर्थिक जीवन

ऐसा अनुमान किया जाता है कि सैंधव सभ्यता की अर्थव्यवस्था कृषिप्रधान थी। सैंधव नगरों की समृद्धि को देखते हुए यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि वहां के किसान अपनी आवश्यकता से अधिक अनाज उत्पादित करते थे तथा अतिरिक्त उत्पादन को नगरों में भेजा करते थे। सैंधव सभ्यता के विभिन्न नगरों में अनाज के भण्डारण के लिए अन्नागार बने होते थे। ऐसा अनुमान किया जाता है कि जनता से कर के रूप में वसूला गया अनाज ही इन अन्नागारों में भण्डारित किया जाता था।

कृषि के साथ ही पशुपालन भी अर्थव्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण अंग था। बैल, गाय, भैंस, सुअर, भेंड़, बकरी, हिरन, खरगोश, कुत्ता आदि प्रमुख पालतू पशु थे। सैंधव निवासी हाथी से भी परिचित थे। सुरकोतडा से प्राप्त अश्व-अस्थि तथा लोथल और रंगपुर से प्राप्त अश्व की मृण्मूर्तियों के आधार पर अब यह निष्कर्ष निकाला जा रहा है कि सैंधव निवासी अश्व से परिचित थे। पशुपालन का विकास अनेक दृष्टियों से सहायक सिद्ध हुआ।

कृषि तथा पशुपालन के साथ-साथ उद्योग एवं व्यापार भी अर्थव्यवस्था के प्रमुख आधार थे। वस्त्र निर्माण इस काल का प्रमुख उद्योग था। विभिन्न प्रकार के मृद्भाण्डों तथा अन्य उपकरणों पर अनेक प्रकार के रंगों के मिलने से यह ज्ञात होता है कि इस काल में रंगाई भी एक महत्त्वपूर्ण व्यवसाय था। मिट्टी के वर्त्तन बनाना, खिलौने बनाना, मुद्राओं का निर्माण करना, आभूषण तथा धात्विक मूर्तियों का निर्माण आदि इस काल के अन्य प्रमुख उद्योग थे। लकड़ियों की वस्तुएं यह प्रमाणित करती हैं कि सैंधव सभ्यता में बढ़ईगिरी का व्यवसाय भी प्रचलित था। नगरों में भवनों का निर्माण कच्ची तथा पक्की ईंटों से हुआ है, जो सूचित करते हैं कि ईंट निर्माण भी एक प्रमुख उद्योग था।

आयात (विभिन्न धातुयें)

धातु	आयात स्थल
लाजवर्द	बदख्शा, मेसोपोटामिया
संगमरमर	राजस्थान
शिलाजीत	हिमालय
फिरोजा	खुरासान
सीसा	राजस्थान, ईरान, अफगानिस्तान
संगयस्त्र एवं मरगज	पामीर
सोना	दक्षिण भारत, अफगानिस्तान
तांबा	खेतड़ी (राजस्थान), बलूचिस्तान
जिप्सम व सेलखड़ी	बलूचिस्तान
अलबास्टर	बलूचिस्तान
नील स्फटिक	दक्षिण पठार, बिहार
वैदूर्य	बदख्शां, अफगानिस्तान
लाल गोमेद	कश्मीर, काठियावाड़, राजस्थान
हैमेटाइट	राजपूताना
बिटुमिन	दजला फरात
हरा अमेजन	नीलगिरी पहाड़ी
टिन, चांदी, रांगा	ईरान या अफगानिस्तान

उत्खननों के दौरान प्राप्त अवशेषों से ऐसा ज्ञात होता है कि सैंधव सभ्यता में व्यापार भी प्रचलित था--आंतरिक एवं बाह्य दोनों स्तरों पर। आज से पांच हजार वर्ष पूर्व ही नगरों का इतना अधिक विकसित होना समुन्नत व्यापार का ही परिणाम दृष्टिगत होता है। हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो प्रमुख व्यापारिक केंद्र थे। व्यापार मुख्यतः जल-मार्ग से ही होता था, पर स्थल मार्ग का भी उपयोग होता था। सैंधव सभ्यता में मैसूर सोना; राजस्थान, मद्रास (चेन्नई) तथा बलूचिस्तान तांबा, अजमेर सीसा तथा कश्मीर एवं काठियावाड़ बहुमूल्य पत्थर के उत्पादक केंद्र थे। अफगानिस्तान, सोवियत, तुर्कमेनिया, मेसोपोटामिया, ईरान आदि देशों से सैंधव सभ्यता में कच्चे मालों का आयात किया जाता था।

सिन्धुवासी मुख्यतः आभूषण, रत्न और वस्त्रों का निर्यात करते थे। सैन्धव वस्तुएं मेसोपोटामिया, मिस्र और तुर्कमेनिया में बड़े पैमाने पर प्रयुक्त होती थीं। भारत में भी मेसोपोटामिया की बेलनाकार मुहर और फारस की मुहर व धातु के बर्तन मिले हैं। अफगानिस्तान में वाणिज्य-उपनिवेश की स्थापना के भी संकेत हैं। मेसोपोटामियाई अभिलेख में प्रयुक्त 'मेलुहा' नामक देश का सिन्धु क्षेत्र से संबंध स्थापित किया जाता है।

कला एवं स्थापत्य

भारत की पहली विकसित सभ्यता होने के बावजूद कला एवं की दृष्टि से अत्यधिक समृद्ध थीं सैंधव सभ्यता। ऐसा माना जा आर्थिक समृद्धि कला एवं स्थापत्य के विकास का प्राणतत्त्व होत सभ्यता आंतरिक एवं बाह्य व्यापार तथा उन्नत कृषि के कारण अ थी। इस सभ्यता के अभी तक के अज्ञात शासकों तथा व्यापा एवं स्थापत्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

सैंधव सभ्यता में वास्तुकला, मूर्तिकला, उत्कीर्णन क मृद्भाण्डकला आदि अत्यधिक उन्नत अवस्था में थी। सैं नगर-निर्माण एवं भवन-निर्माण योजना वास्तुकला के उ नगर-निर्माण योजना एव भवन-निर्माण योजना की उत्कृ संकेतित करती है कि सैंधव सभ्यता में उत्कृष्ट श्रेणी वास्तुकार निवास करते थे। सैंधव सभ्यता की मूर्तिक

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

की थी। मूर्तियों का निर्माण पाषाणों, धातुओं एवं मिट्टियों से होता था। पाषाणिक तथा धात्विक मूर्तियां कलात्मक दृष्टि से उच्चकोटि के हैं। सैंधव मूर्तिकला के अंतर्गत लाल रंग की दोस पकायी मिट्टी की उल्लेख किया जाता है। ये मनुष्यों तथा पशुओं दोनों की हैं। सैंधव स्थलों की खुदाई में मानव मूर्तियों से अधिक पशुओं की मृण्मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। ये मूर्तियां कलात्मक दृष्टि से उच्चकोटि की हैं। इनमें कूबड़दार बैल विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अन्य पशुओं में हाथी, गैंडा, बंदर, सूअर, बाघ, भालू, खरगोश, भैंसा, भेड़ आदि की मूर्तियां अधिकांशतः प्राप्त होती हैं। पक्षियों में मुख्य रूप से गोर, कबूतर, तोता, कोल, गौरैया, मुर्गा, उल्लू आदि की मृण्मूर्तियां प्राप्त होती हैं।

सैंधव सभ्यता में मुहर-निर्माण का भी कलात्मक विकास हुआ। मुहरें में हमें उत्कीर्णन कला की सुंदरता दृष्टिगत होती है। विभिन्न सैंधव स्थलों से अब तक दो हजार से भी अधिक मुहरें प्राप्त की जा चुकी हैं। इन मुहरों में सर्वाधिक संख्या में सेलखड़ी की मुहरें हैं, जबकि मुहर-निर्माण के लिए चर्ट, गोमेद, कांचली मिट्टी, साधारण मिट्टी आदि का उपयोग भी किया जाता था। अधिकांश मुहरें वर्गाकार अथवा चौकोर हैं, जबकि गोलाकार, घनाकार या बेलनाकार मुहरें भी उत्खननों के दौरान प्राप्त हुई हैं। मुहरों के पीछे छेदकर एक घुण्डी लगायी जाती थी और इन्हें धागे से बांधकर उपयोग में लाया जाता था। मुहरों पर मनुष्य, पशु, वृक्ष आदि उत्कीर्ण किए जाते थे। पशुओं में एकश्रृंगी पशु, वृषभ, गैंडा, बाघ, भैंसा, हिरन, हाथी, बकरा, खरगोश, भेड़ आदि प्रमुख हैं।

मुहरों के साथ-साथ मनकों का निर्माण भी विकसित अवस्था में था। उत्खननों के दौरान विभिन्न प्रकार के मनके प्राप्त हुए हैं, जो सेलखड़ी, गोमेद, शंख, सीप, कांचली मिट्टी, हाथीदांत, सोना, चांदी, तांबा आदि से बने हैं। मुहरों तथा मनकों के अतिरिक्त सैंधव स्थलों (विशेषकर मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा) से कुछ ताम्र-निर्मित पट्टिकायें भी मिलती हैं, जिन्हें कुछ विद्वान् ताबीज, तो कुछ विद्वान ताम्र-मुद्रा की संज्ञा देते हैं।

सैंधव निवासी मृदभाण्ड के निर्माण में भी सिद्धहस्त थे। विभिन्न स्थलों के उत्खननों के दौरान विभिन्न प्रकार की आकृतियों में अनेक मृत्तिका पात्र तथा उनके खण्डित अवशेष पाए गए हैं। सैंधव सभ्यता में लाल या गुलाबी मृदभाण्ड का उपयोग बहुतायत में होता था। कुछ मृदभाण्ड लाल एवं काले भी हैं। कोठिले (अनाज के भण्डारण के लिए बनाया जाने वाला पात्र), घड़े, सुराही, मर्तबान, कटोरे, प्याले, तश्तरियां, कुल्हड़, थालियां, नादें आदि प्रमुख मृदभाण्ड हैं, जो खुदाई के दौरान प्राप्त हुए हैं।

धार्मिक स्थिति

पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि सैंधव लोगों की धर्म में अत्यधिक आस्था थी। विभिन्न प्रकार की मृण्मूर्तियां वे धात्विक मृण्मूर्तियां मिली हैं, जो यह संकेतित करती हैं कि धर्म प्राणतत्त्व था सैंधव निवासियों का। वर्तमान भारत में जो भी धार्मिक मान्यताएं प्रचलित हैं, उनमें से अधिकांश सैंधव-सभ्यता में भी प्रचलित थीं।

सैंधव नगरों की खुदाई में कोई भी मंदिर, समाधि आदि के स्पष्ट प्रमाण नहीं मिले हैं। राजस्थान के कालीबंगन नामक स्थल की खुदाई में एक गोटा-सा घिरा हुआ क्षेत्र जला हुआ प्राप्त हुआ है, जिसे यज्ञवेदी की संज्ञा जा रही है। मोहनजोदड़ो से एक ऐसी मूर्ति प्राप्त हुई है, जिसके सिर पंखे के समान फैला हुआ आवरण है और वह करधनी, हार, कर्णफूल, हार आदि आभूषण पहने हुए है। इस मूर्ति को विभिन्न विद्वानों द्वारा की संज्ञा दी गयी है और इसी आधार पर यह कहा जाता है कि सैंधव मातृदेवी के उपासक थे।

हनजोदड़ो से ही पदमासन की मुद्रा में एक ऐसी पुरुषाकृति मिली की दायीं ओर चीता और हाथी तथा बायीं ओर गैण्डा और भैंसा इस पुरुष के सिर पर त्रिशूल जैसा आभूषण भी है। विद्वानों ने इस को देवता की संज्ञा दी है और इसकी तुलना पशुपति शिव से पुरुषाकृति में तीन मुख भी हैं, इसलिए इसे त्रिमुख, पशुपति

धार्मिक प्रतीक चिह्न

प्रतीक चिन्ह	महत्त्व
स्वास्तिक	सूर्य उपासना का प्रतीक
योगी शिव	योगीश्वर
ताबीज	प्रजनन शक्ति का प्रतीक
बैल	शिव का वाहन, सर्वाधिक धार्मिक महत्त्व वाला पशु
बकरा	बलि हेतु प्रयुक्त
नाग	पूजा की जाती थी
शृंग	शिव का रूप
भैंसा	देवता की शत्रुओं पर विजय का प्रतीक
बैल, बकरी एवं भेड़ की हड्डियों के ढेर	पशुबलि के द्योतक
कांस्य नर्तकी	नृत्य की परिकल्पना
दोहरा शवाधान	पति के साथ पत्नी का सती होना

योगेश्वर और महायोगी की भी संज्ञा दी जाती है।

मातृदेवी तथा पशुपति शिव की आराधना के अतिरिक्त विविध प्रकार के पशुओं, पक्षियों, वृक्षों आदि में धार्मिक-श्रद्धा रखते थे। पशुओं में गैण्डा, बैल, चीता, हाथी, भैंसा, कूबड़दार बैल आदि प्रमुख हैं। फाख्ता को एक पवित्र पक्षी के रूप में माना जाता था। वृक्षों में पीपल सर्वाधिक पवित्र था।

सैंधव लोग पारलौकिकता में भी पर्याप्त विश्वास रखते थे, जिसका प्रमाण खुदाई में शवों के साथ दैनिक उपभोग की वस्तुओं (बर्तन, आभूषण आदि) का प्राप्त होना है। ये लोग तंत्र विद्या में भी विश्वास रखते थे। सैंधव स्थलों से ताबीजे भी प्राप्त हुई हैं। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि प्रत्येक सैंधव निवासी मुद्रा को तावीज के रूप में धारण करता था और तावीजों पर विभिन्न प्रकार के चित्र खुदे हुए हैं, जो इनके धार्मिक महत्त्व को संकेतित करते हैं।

देवी-देवताओं, पशु-पक्षियों एवं वृक्षों की उपासना के अतिरिक्त कूर्मकाण्डीय विधान के संकेत भी मिलते हैं। लोथल एवं कालीबंगा से अग्निकुण्डों अथवा यज्ञवेदियों के प्रमाण मिले हैं। लोथल के अग्निकुण्ड में जली हड्डियां, मनके, चित्रित मृदभाण्ड के टुकड़े तथा राख मिली है। इस आधार पर यह कहा जाता है कि सैंधव लोग पशुबलि भी देते थे। इस प्रकार हिन्दू धर्म की भक्तिपरकता और कर्मकाण्ड का आरंभिक प्रमाण सैंधव सभ्यता में ही प्राप्त होता है।

राजनीतिक स्थिति

सैंधव सभ्यता की राजनीतिक स्थिति के संबंध में जो कुछ भी निष्कर्ष निकाले गए हैं, वे अनुमान पर ही आधारित हैं। धौलावीरा के उत्खनन के पूर्व ऐसा माना जाता था कि हड़प्पा और मोहनजोदड़ो सिंधुघाटी सभ्यता की दो राजधानियां थीं और इनके द्वारा क्रमशः सभ्यता के उत्तरी और दक्षिणी भाग का शासन कार्य संपादित होता था। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि प्रमुख सैंधव स्थलों का शासन दुर्गों द्वारा होता था। शासनाधिकारी श्रम, भार, मूल्य आदि में एकरूपता स्थापित करने के लिए उत्तरदायी थे। शासन का स्वरूप धार्मिक था और शासक राजत्व के दैवी सिद्धांत के अनुसार कार्य करता था। कुछ विद्वानों का ऐसा मानना है कि सैंधव सभ्यता में शासन कार्य पुरोहित किया करते थे, जबकि कुछ इस मत को स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं कि शासन का कार्य व्यापारियों द्वारा होता था।

भाषा एवं लिपि

विभिन्न सैंधव स्थलों की खोज के बाद अब तक लगभग 400 अक्षरों की खोज की जा चुकी है, पर दुर्भाग्यवश उन्हें अब तक पढ़ा नहीं जा सका है। सैंधव लिपि भावचित्रात्मक है और इसकी पढ़ाई के लिए नियमित रूप से शोध-कार्य चल रहे हैं। लिपि चिह्नों में स्पष्टता, विस्तार और विभिन्नता दिखती है। लिपियों के अभी तक के अध्ययन से यह दृष्टिगोचर होता है कि लिपियों को प्रत्येक पंक्ति में उलटकर लिखा जाता है। सामान्यतः वाक्य में लिपियों को दायीं से बायीं ओर लिखा जाता था।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

शवाधान पद्धति

सैंधव सभ्यता के जिन स्थलों की अब तक खोज की जा चुकी है, उनमें सर्वप्रथम हड़प्पा की ही खोज की गई थी। सर मार्टीमर ह्वीलर ने अपने अनुसंधान के बाद सैंधव सभ्यता में शवाधान के कुछ विशिष्ट प्रकारों पर प्रकाश डाला है। हड़प्पा की खुदाई में एक तीन कक्षों वाला कब्रिस्तान मिला है, जिसे आर 37 की संज्ञा दी गई है। शवाधान का जो तरीका सर्वाधिक प्रचलित था, वह था शवों को पूर्ण रूप से दफनाना। कभी-कभी शवों को खाली मैदान में भी छोड़ दिया जाता था, जहां पशु उन्हें अपना आहार बना लेते थे। हड़प्पा में शवों को उत्तर-दक्षिण दिशा में रखकर दफनाया जाता था और सिर को उत्तर दिशा में रखा जाता था। शवाधान की एक अन्य पद्धति दाह कर्म भी प्रचलित थी। दाह-कर्म के अंतर्गत शवों को जलाकर भस्म बनाया जाता था और भस्मों तथा अस्थियों को घड़े में भरकर समाधियों में गाड़ दिया जाता था। सामान्यतः, एक कब्र में एक ही शव को दफनाया जाता था, परन्तु कालीबंगन से एक और लोथल से तीन युगल शवाधान के प्रमाण मिले हैं। कुछ जगहों पर घड़े में भस्मों को रखने के साथ-साथ दैनिक उपभोग की सामान्य वस्तुओं व आभूषणों को भी रखा जाता था। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि सैंधव निवासियों का पारलौकिकता में विश्वास था।

सभ्यता का पतन

कोई भी सभ्यता जब विकास का चरमोत्कर्ष प्राप्त कर लेती है, तब उसमें क्रमिक ह्रास के लक्षण भी प्रकट होने लगते हैं और शनैः शनैः उसका पतन भी सुनिश्चित हो जाता है। किसी भी सभ्यता के पतन में अनेक कारक सहभागी होते हैं और सैंधव सभ्यता भी इसका अपवाद नहीं है। इस सभ्यता के पतन को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। पूर्व में यह मत था कि इस सभ्यता का पूर्णतः नाश हो गया और विभिन्न विद्वान विभिन्न प्रकार के कारणों को इसके पतन के लिए उत्तरदायी ठहरा रहे थे। परन्तु, हाल के वर्षों के सूक्ष्म विश्लेषण के बाद यह तथ्य स्पष्ट रूप से स्थापित हो गया है कि सैंधव सभ्यता का विनाश कभी हुआ ही नहीं, बल्कि इस सभ्यता के कुछ प्रमुख स्थलों के विनष्ट हो जाने के कारण इसकी संस्कृति का अपेक्षाकृत कम विकसित शहरों की ओर स्थानांतरण हो गया।

सैंधव सभ्यता के पतन के लिए अनेक कारणों को उत्तरदायी माना जाता है। विभिन्न विद्वानों द्वारा स्थापित पतन के कारणों का विस्तृत विवरण हम निम्न बिन्दुओं के अंतर्गत दे रहे हैं:

(i) बाढ़: सैंधव सभ्यता के पतन का एक प्रमुख कारण नदियों में आने वाली नियमित बाढ़ को माना जाता है। मार्शल, मैके, एस.आर. राव आदि विद्वान इस मत के प्रतिपादक और सम्पोषक हैं। इन विद्वानों का यह तर्क है कि अधिकांश सैंधव नगर नदियों के तट पर अवस्थित थे और नदियों में प्रतिवर्ष बाढ़ आती थी। बाढ़ के कारण नगरों के बार-बार पुनर्निर्माण के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। बार-बार की तबाही को देखते हुए लोगों ने स्थान-परिवर्तन का निश्चय कर लिया होगा। इसलिए, सैंधव सभ्यता के पतन का कारण एकमात्र नदियों में बाढ़ आना ही है।

(ii) जल प्लावन: प्रसिद्ध वैज्ञानिक एम.आर. साहनी का यह मत है कि सैंधव नगरों का पतन जल-प्लावन के कारण हुआ। प्रमुख सैंधव नगरों में जल प्लावन से जमीन दलदल तथा कीचड़युक्त हो गयी। इससे कृषि का उत्पादन कम हुआ और यातायात भी प्रभावित हुआ। जब लोगों का जनजीवन प्रभावित होने लगा, तो वे अपेक्षाकृत कम विकसित नगरों की ओर पलायन करने लगे और धीरे धीरे सभ्यता का पतन हो गया।

(iii) नदियों के जल-मार्ग में परिवर्तन: नदियां अपने प्रवाह-मार्ग को कालक्रमानुसार परिवर्तित करती रहती है। प्रसिद्ध विद्वान एच.टी. लैम्ब्रिक, जी.एफ. देल्स तथा माधोस्वरूप वत्स ने इसी मार्ग परिवर्तन को सभ्यता के पतन का कारण माना है। एम.एस. वत्स के अनुसार, हड़प्पा नगर का पतन रावी नदी के मार्ग-परिवर्तन के कारण हुआ, जबकि देल्स के अनुसार, कालीबंगा का पतन घग्गर और उसकी सहायक नदियों के मार्ग-परिवर्तन के कारण हुआ। नदियों के मार्ग परिवर्तन से खेतों को सींचा जाना असंभव हो गया और इससे यातायात भी प्रभावित हुआ।

(iv) जलवायु परिवर्तन: किसी भी स्थान के विकास को वहां की जलवायु काफी हद तक प्रभावित करती है। सैंधव सभ्यता में जब तक जलवायु अनुकूल रही, तब तक उसका नियमित विकास होता रहा। परन्तु, बाद के वर्षों में जलवायु प्रतिकूल होती गयी और सभ्यता का पतन हो गया। आरेल स्टीन, ए.एन. घोष आदि विद्वान इस मत के सम्पोषक हैं।

(v) प्राकृतिक आपदा: सैंधव सभ्यता के सर्वप्रमुख स्थल मोहनजोदड़ो से प्राप्त नर-कंकालों का परीक्षण करने के पश्चात डॉ. के.यू.आर. कैनेडे ने यह निष्कर्ष निकाला है कि सैंधव लोग मलेरिया, महामारी आदि-जैसी प्राकृतिक आपदाओं के शिकार हुए।

(vi) पर्यावरण में भौतिक-रासायनिक विस्फोट: रूसी विद्वान एम. दिमित्रियेव ने इस मत की स्थापना की कि सैंधव-सभ्यता का पतन पर्यावरण में होने वाले किसी अप्रत्याशित रासायनिक-भौतिक विस्फोट के कारण हुआ।

(vii) बाह्य आक्रमण: मार्टीमर ह्वीलर, स्टुवर्ट पिग्गट, गार्डन चाइल्ड आदि विद्वानों ने अपने अध्ययनों के उपरांत यह मत स्थापित किया कि सैंधव-सभ्यता का पतन बाह्य आक्रमणों के कारण हुआ। मोहनजोदड़ो में एक ही कपड़े में तेरह व्यक्तियों के अस्थि-अवशेष की प्राप्ति के आधार पर यह कहा जाता है कि अचानक किए गए आक्रमण में वे मारे गए। ह्वीलर ने अपने अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि वैदिक संस्कृति को स्थापित करने वाले आर्यों ने 1500 ई.पू. में अचानक आक्रमण कर सैंधव नगरों को ध्वस्त करते हुए वहां के नागरिकों को मार डाला।

सैंधव सभ्यता के पतन के ऊपर दिए गए सभी कारणों का काट भी प्रस्तुत किया जाता है। इन कारणों में से सर्वाधिक मान्य बाढ़ और बाह्य आक्रमण ही हैं। परन्तु, अब तो यह मानकर ही चलना चाहिए कि सैंधव सभ्यता का पूर्ण पतन हुआ ही नहीं।

हड़प्पा संस्कृति के पतन के कारण

पतन का कारण		मत के संस्थापक
1. नदी की शुष्कता	-	शूद और अग्रवाल
2. अस्थिर नदी-तंत्र	-	लैम्ब्रिक
3. जलवायु-परिवर्तन	-	आरेल स्टीन और ए.एन. घोष
4. प्राकृतिक आपदा	-	के.यू.आर. केनेडी
5. भूकम्प	-	रेइक्स
6. पारिस्थितिक असंतुलन	-	फेयर सर्विस
7. आर्यों का आक्रमण	-	आर. मार्टीमर ह्वीलर
8. बाह्य आक्रमण	-	गार्डन चाइल्ड, स्टुवर्ट पिगट

सिन्धु सभ्यता का अन्य समकालीन संस्कृतियों से सपंर्क

सिन्धु सभ्यता एक नगरीय सभ्यता थी। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो जैसे शहरों के अलावा अल्लाहदीनो (कराची के पास) जैसी बहुत सी छोटी बस्तियों से भी ऐसे प्रमाण मिलते हैं जो शहरी अर्थव्यवस्था के सूचक हैं। शहरी अर्थव्यवस्था की यह विशेषता होती है कि इनमें अंतर्संबंधों का तंत्र किसी क्षेत्रीय सीमा में नहीं बंधा होता। यद्यपि सिन्धु सभ्यता विकसित, समृद्ध एवं नगरीय अर्थव्यवस्था पर आधारित संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती थी तथापि उसका विश्व की अन्य समकालीन संस्कृतियों के साथ भी व्यापारिक एवं सांस्कृतिक संबंध स्थापित थे। सिन्धु सभ्यता के लोगों ने मध्य एशिया, फारस की खाड़ी के देशों, उत्तरी-पूर्वी अफगानिस्तान, ईरान, बहरीन द्वीप, मेसोपोटामिया, मिस्र, क्रीट आदि सभ्यताओं से संबंध स्थापित कर रखे थे। सिन्धु घाटी सभ्यता का विश्व के कुछ अन्य समकालीन सभ्यताओं/संस्कृतियों से संबंधों का विवरण इस प्रकार है—

मेसोपोटामिया : सिंधु सभ्यता और मेसोपोटामिया के बीच सम्पर्कों के

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने के लिए दो तरह के स्रोतों को आधार बनाया जाता है। पहले स्रोत के रूप में पुरातात्विक प्रमाणों को आधार बनाया जाता है जबकि दूसरे प्रकार के स्रोतों के अंतर्गत लिखित प्रमाणों को साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

मेसोपोटामिया के विभिन्न स्थलों- सुमेर, ऊर, तेल असमार, किश, लगश, निप्पुर आदि से सैन्धव कारीगरों अथवा उनके प्रभाव से निर्मित अनेक वस्तुएं खुदाई के उपरांत प्राप्त हुई हैं।

मेसोपोटामिया के सूसा, ऊर आदि शहरों में हड़प्पाकालीन मुहरों से मिलती-जुलती लगभग दो दर्जन मुहरें पायी गयी हैं। निप्पुर शहर से एक मुहर मिली है जिस पर हड़प्पाकालीन लिपि उत्कीर्ण है और एक सींग वाले पशु की आकृति भी बनी हुई है। यहां से पक्की मिट्टी की छोटी मूर्तियां भी प्राप्त हुई हैं, जो साधारणतया सिन्धु घाटी में पायी गई हैं। इन छोटी मूर्तियों में एक मोटे पेट वाला नग्न पुरुष, जानवरों जैसे चेहरे, गोल मटोल मुंछे तथा हिलने-डुलने वाले हाथों को जोड़ने के लिए कंधों में खाली जगह वाली मूर्तियां आदि प्रमुख हैं।

सिन्धु संस्कृति के चौसर के नमूने (1/2, 3/6, 4/5) मेसोपोटामिया के ऊर, निप्पुर और तेल असमार स्थलों से प्राप्त हुए हैं। जिनसे हड़प्पा सभ्यता के प्रभाव का पता चलता है।

मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक ठीकरे के ऊपर सुमेरियन नावों के चित्र अंकित हैं जो समुद्री व्यापार का सूचक है। सुमेर (मेसोपाटामिया) सभ्यता के सम्पर्क के कुछ लक्षणों में से एक उस मुद्रा में परिलक्षित होता है जिसमें एक योद्धा को दो चीतों से मल्ल युद्ध करते हुए अंकित किया गया है। जो प्रसिद्ध मेसोपोटामियन चित्रचेष्टानलक्ष का एक प्रतिभेद है जिसमें योद्धा गिलगमेश को दो शेरों से युद्ध करते हुए दिखाया गया है। नायक का गोल तेजस्वी चेहरा तथा उसके केशों का विचित्र विन्यास (श्रृंगार) संकेत करता है कि यह सूर्य का प्रतीक है और रात्रि में निकलकर आखेट करने वाले चीते अंधकार की शक्तियां हैं।

तेल असमार में हड़प्पाकालीन मृतिका शिल्प, नक्काशी किये हुए लाल पत्थर के मनके और गुर्दे के आकार के हड्डी के जड़ाऊ काम पाए गए हैं। इनके अतिरिक्त मेसोपोटामियां में विशिष्ट आकार के मनके पाए गए हैं और संभव है कि ये सिन्धु घाटी से ही लाए गए थे। चन्हुदड़ो में पाये गए इक्हरे, दोहरे, तिहरे वृत्ताकार मनके मेसोपोटामिया के किश नामक स्थल से पाये गये मनकों से बहुत मिलते-जुलते हैं। मेसोपोटामिया में हड़प्पाकालीन तौल (बाट) भी पाए गए हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि सिन्धु सभ्यता और इन क्षेत्रों के बीच व्यापार विनिमय संबंध थे।

हड़प्पा-सभ्यता की बस्तियों में मेसोपोटामिया की व्यापार संबंधी वस्तुओं की कमी हैरत में डालने वाली बात है। सैंधव क्षेत्र में मेसोपोटामिया की केवल तीन बेलनाकार मुहरें और धातु की कुछ चीजें मिली हैं। लेकिन मेसोपोटामिया में कुछ प्राचीन लेख पाये गये हैं जिनसे उसके हड़प्पाकालीन सभ्यता के साथ व्यापार संबंधों का पता चलता है।

मेसोपोटामया में स्थित अक्कड के प्रसिद्ध सम्राट सारगॉन (2350 ई.पू.) के बारे में मेसोपोटामियाई पुरालेखों में उल्लेख हुआ है कि उसे इस बात का गर्व था कि दिलमुन, माकन और मेलुहा के जहाज उसकी राजधानी से गुजरते थे।

दिलमुन को आमतौर पर फारस की खाड़ी के क्षेत्र में स्थित बहरीन माना जाता है और माकन की पहचान शायद मकरान तट से की जा सकती है। दिलमुन और माकन दोनों मेसोपोटामिया और मेलुहा के बीच स्थित थे। मेलुहा का अर्थ आमतौर पर भारत लगाया जाता है विशेषतः उसका सैन्धव और सौराष्ट्र का क्षेत्र।

मेसोपोटामिया के ऊर शहर के व्यापारियों द्वारा प्रयोग में लाए जाने वाले कुछ अन्य दस्तावेज भी पाए गए हैं। ये इस बात की ओर संकेत करते हैं कि ऊर के व्यापारी मेलुहा से तांबा, गोमेद, हाथी दांत, सीपी, वैदूर्यमणि और आबनूस आयात करते थे। मेसोपोटामिया के आरंभिक साहित्य में मेलुहा के व्यापार समुदाय का उल्लेख है जो मेसोपोटामिया में रहता था। मेसोपोटामिया के एक अन्य लिखित दस्तावेज में मेलुहा की भाषा के सरकारी दृष्टिकोण का उल्लेख है। सिंधु सभ्यता की अधिकांश वस्तुएं मेसोपोटामियाई स्थलों से प्राप्त हुई हैं जबकि हड़प्पाकालीन स्थलों में मेसोपोटामिया की वस्तुओं का सामान्यतया न पाया जाना इस तथ्य को निर्दिष्ट करता है कि परम्परागत रूप से मेसोपोटामिया के लोग कपड़े, ऊन, खुशबूदार तेल और घमले के उत्पाद बाहर भेजते थे। ये सभी वस्तुएं जल्दी नष्ट हो जाती हैं। इस कारण इनके अवशेष सिन्धु सभ्यता के किसी भी स्थल से नहीं मिलते हैं। हड़प्पा सभ्यता की बस्तियों में चांदी के स्रोत नहीं थे। लेकिन यहां के निवासियों द्वारा काफी मात्रा में इसका प्रयोग किया जाता था। सम्भवतया यह मेसोपोटामिया से भी आयात किया जाता होगा। इन सब उदाहरणों से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि हड़प्पा-सभ्यता के लोगों और मेसोपोटामिया के लोगों के बीच घनिष्ट संबंध स्थापित थे।

मिस्र : मिस्र से सिन्धु सभ्यता का व्यापारिक संबंध अपेक्षाकृत कम था। यहां से हड़प्पा के प्रकार की गुरिया (मनके) मिली हैं। मिस्र के साथ व्यापार मुख्यतः लोथल से होता था। यहां के उत्खननकर्ता एस.आर. राव को गोरिल्ला की एक मृण्मूर्ति तथा 'मगी' की एक आकृति प्राप्त हुई है जिसे मिस्र के साथ सम्पर्क के साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

यद्यपि यह माना जाता है कि हड़प्पा संस्कृति का मिस्र के साथ व्यापारिक और सांस्कृतिक संबंध मेसोपोटामिया के माध्यम से ही था किंतु मिस्र से प्राप्त सभी वस्तुओं और उनकी प्रकृति से यह संकेत मिलता है कि मिस्र से हड़प्पा सभ्यता का कुछ हद तक प्रत्यक्ष संबंध भी था। सिन्धु सभ्यता के कुछ मुख्य उत्पाद जैसे आबनूस, हाथी दांत, चंदन की लकड़ी और सूती वस्त्रों के उत्पाद मिस्र को निर्यात किए जाते थे। हड़प्पा की लिपि वर्णात्मक नहीं, बल्कि मुख्यतः चित्र-लेखात्मक है। मिस्र की एलामाइट लिपि और हड़प्पन लिपि में कुछ सामान लक्षण पाये गये हैं जिसके आधार पर इन दोनों संस्कृतियों के बीच प्रत्यक्ष संबंधों की कल्पना की जाती है।

अफगानिस्तान : सिन्धु सभ्यता के निवासियों ने उत्तरी अफगानिस्तान में एक वाणिज्य उपनिवेश स्थापित किया था जिसके सहारे उनका व्यापार मध्य एशिया के साथ चलता था। वैदूर्यमणि जो कि कीमती पत्थर था उत्तरी पूर्वी अफगानिस्तान में बदक्शा में पाया जाता था। इस क्षेत्र में शोर्तुघई और अलतिन देपे जैसी हड़प्पाकालीन बस्तियों का पाया जाना इस बात की ओर संकेत करता है कि हड़प्पा-संस्कृति के लोगों ने दूरस्थ क्षेत्रों में पाये जाने वाले खनिज पदार्थों का उपयोग करने के लिए उपनिवेशीकरण की नीति अपनाई थी।

दक्षिणी अफगानिस्तान में पाये गये वृहद अन्नागार हड़प्पन नगरों में पाये गये अन्नागारों से समानता दर्शाते हैं। सिन्धु सभ्यता के आरंभिक काल में इस स्थान के निवासी शिल्पकृतियों का प्रयोग करते थे जिनसे एक ओर ईरान के कुछ नगरों और दूसरी ओर बलूचिस्तान के कुछ नगरों के साथ संबंधों का पता चलता है पक्की मिट्टी की बनी हुई स्त्रियों की छोटी-छोटी मूर्तियां भी मिली हैं जो बलूचिस्तान की बस्तियों में पायी गयी मूर्तियों से मिलती-जुलती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह स्थान व्यापारिक मार्ग पर स्थित रहा होगा।

तुर्कमेनिया (मध्य एशिया) : सिन्धु सभ्यता और तुर्कमेनिया के बीच सम्बन्धों के संदर्भ में कुछ संकेत मिलते हैं। तुर्कमेनिया गणराज्य से कैस्पियन सागर के तट पर स्थित अलतिन देपे, नामज्गा देपे, अनाउ आदि से सैन्धव प्रकार के भाण्ड, मुहरें, मनके, ताम्रपत्र आदि मिले हैं। ये सभी वस्तुए हड़प्पा संस्कृति की देन मानी जाती हैं।

कांसे के पिन, उत्कृष्ट ढंग से बने जानवर तथा लम्बे ग्रीवा वाली कांस्य की छोटी सुराही आदि वस्तुओं का सिन्धु सभ्यता के कई स्थलों से पाया जाना, मध्य एशियाई प्रकृति को दर्शाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि तुर्कमेनिया से हड़प्पा संस्कृति का आपसी आदान-प्रदान का संबंध था।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

कीट मीट के साथ भी सैंधव लोगों का किसी न किसी रूप में संबंध अवश्य रहा होगा। यहां के कुछ भित्ति चित्र, जिन पर बैल तथा मनुष्य के युद्ध के दृश्य अंकित हैं मोहनजोदडो की मुद्राओं पर अंकित कुछ चित्रों के समान हैं। दोनों सभ्यताओं में मातृ-शक्ति की उपासना होती थी तथा दोनों के निवासी बैल, बत्तख, पाषाण स्तंभ को पवित्र मानते थे। इससे स्पष्ट होता है कि दोनों सभ्यताओं के बीच आपसी सम्पर्क स्थापित था।

ओमानः ओमान द्वीप के विभिन्न स्थलों से खुदाई के उपरांत सैन्धव मूल की कलात्मक वस्तुएं प्राप्त की गयी हैं। कुछ मृदभांडों के ऊपर पीपल की पत्तियों तथा मोर पक्षी का चित्रण मिलता है। ऐसा संकेत मिलता है कि सोथल से सुत्कागेन्डोर होते हुए जो व्यापारी फारस की खाडी के देशों को जाते थे वे ओमान में पडाव डालते थे। जार, हाथी दांत से बने कंघे, लाल पत्थरों से बने मनके आदि वस्तुएं ओमान में खुदाई से मिली हैं। जिनकी प्रकृति सिन्धु संस्कृति की वस्तुओं से मिलती है। जाहिर है ये वस्तुएं सिन्धु सभ्यता से पहुंचायी गयी होंगी।

बहरीनः दिलमुन की पहचान बहरीन द्वीप के रूप में की गयी है। यह स्थान सिन्धु तथा मेसोपोटामिया के मध्य स्थित था। डेनमार्क के पुरातत्ववेत्ताओं के निर्देशन में बहरीन द्वीप के रस-अल- कला एवं बर्बर नामक स्थलों की खुदाई करवायी गयी। यहां से नगर योजना के साक्ष्य मिले हैं तथा सैन्धव संस्कृति की विविध वस्तुएं जैसे मुहरें, घनाकार बाट आदि भी प्राप्त हुए हैं। फारस की खाडी में स्थित फेलका से सेलखडी की वृत्ताकार मुहरें मिलती हैं। जिन पर सैन्धव लिपि में लेख हैं। बहरीन के स्थलों से फारस की खाडी शैली की मुहरें भी मिलती हैं। लगता है कि ये मुहरें फारस की खाडी के बंदरगाहों से यहां लाई गई होंगी।

व्यापार का परिमाण चाहे जो भी रहा हो, हडप्पाई मुहरों पर उत्कीर्ण नावों और जहाजों की ढेर सारी आकृतियों व लोथल से प्राप्त जहाज की एक पक्व मृणमूर्ति से परिवहन के संदर्भ में कुछ अंदाजा अवश्य लगाया जा सकता है और इससे यह स्पष्ट होता है कि हडप्पा-संस्कृति के लोगों ने भारतीय उपमहाद्वीप के भीतर और बाहर अंतरक्षेत्रीय व्यापार का एक वृहद तंत्र स्थापित कर लिया था। निश्चित रूप से इसके लिए व्यापारियों का एक सुदृढ़ संगठन भी सिन्धु प्रदेश में कार्यरत रहा होगा।

हड़प्पा-सभ्यता के लोगों की समकालीन सभ्यताओं और संस्कृतियों के साथ व्यापार और विनिमय के कार्यकलापों का यदि मूल्यांकन किया जाये तो यह स्पष्ट होता है कि सैन्धव निवासियों का बाह्य व्यापार उनके आंतरिक व्यापार की अपेक्षा अधिक विकसित था। बाह्य व्यापार का अति उन्नत होना यह सिद्ध करता है कि सिन्धु संस्कृति के लोगों का विश्व की समकालीन संस्कृतियों से घनिष्ट संम्पर्क था।

सैंधव सभ्यता के प्रमुख स्थल

आलमगीरपुरः 1958 ई. में उत्खनन के फलस्वरूप इस स्थल से हड़प्पा-सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए। आलमगीरपुर को हड़प्पा-सभ्यता की पूर्वी सीमा के रूप में निर्धारित किया जाता है। यद्यपि यहां से प्राप्त मृदभाण्ड विकसित हडप्पा-सभ्यता के ही समान हैं, तथापि उत्खनन से प्राप्त अन्य अवशेष इस बात का परिचायक हैं कि आलमगीरपुर का विकास निश्चित रूप से हडप्पा सभ्यता के अंतिम चरण में हुआ। आलमगीरपुर में सैंधव सभ्यता की एक भी मुहरें नहीं मिली हैं। सैंधव सभ्यता के विनाश के पश्चात भी आलमगीरपुर की निरंतरता बनी रही।

कालीबंगाः राजस्थान के गंगानगर जिले में घग्घर नदी के किनारे सैंधव सभ्यता का एक प्रमुख नगर था कालीबंगा। कालीबंगा काली चुडियों का प्रतीक है। कालीबंगा की खुदाई में काली-चुड़ियां बहुतायत में पायी गयी हैं। 1961 से 1969 ई के बीच बी.बी. लाल एवं बी.के. थापर ने इस सैंधव स्थल पर उत्खनन का कार्य किया। कालीबंगा के प्रथम चरण की सर्वोत्कृष्ट खोज एक जुता हुआ खेत हैं। कालीबंगा का द्वितीय चरण विकसित सैंधव सभ्यता का एक प्रमुख अंग है। कालीबंगा में दुर्ग के दक्षिणी भाग में हवन कुण्ड के प्रमाण मिलते हैं। यहीं ईंटो पर उत्कीर्ण जानवरों के पद-चिह्न मिले हैं। इसके साथ ही एक कुआं भी मिला है। मोहनजोदडो एवं हडप्पा के विपरीत कालीबंगा में कच्ची ईंटों का अधिक प्रयोग हुआ है। कालीबंगा से मुहरें, बटखरे, मृण्मूर्तियां आदि तो प्राप्त हुई ही हैं, यहां से गेहूं एवं जौ की खेती के प्रमाण भी मिले हैं। कालीबंगा में शवों को मृदभाण्डों एवं आभूषणों के साथ दफनाया जाता था। यहां से आयताकार एवं अण्डाकार कब्रगाह प्राप्त हुए हैं।

कालीबंगा में तीन प्रकार की शवाधान-पद्धतियां प्रचलित थी--(i) शवों के साथ अंत्येष्टि पात्र का रखा जाना, (ii) वृत्ताकार गर्त्त में बिना अस्थि अवशेषों के अस्थिपात्र व अन्य लघु पात्र का रखा जाना और (iii) आयताकार गर्त्त में अस्थि-अवशेषों के बिना अंत्येष्टि पात्र का रखा जाना। कालीबंगा से भैंस, हाथी, ऊंट, बकरी, गाय, चीतल, मुर्गा, कछुआ, गैंडा तथा बडी संख्या में सीपों के अवशेष मिले हैं। यहां प्रत्येक मकान में अग्निकुण्ड है तथा अग्निकुण्ड अण्डाकार या आयताकार है। यहां से प्राप्त अवशेषों में बेलनाकार मुहर भी उल्लेखनीय है।

कोटदिजीः इस स्थल को पूर्व सैंधव सभ्यता के अंग के रूप में विशेष रूप से जाना जाता है। इसकी खोज प्रथम बार 1935 ई. में धुर्ये ने की। बाद में फजल अहमद ने 1953 ई. में इस स्थल पर पूर्ण प्रकाश डाला। कोटदिजी में एक किलेबंद सिंधु-पूर्व सभ्यता की बस्ती दृष्टिगत होती है, जिसमें जीवन-यापन के अनेक निक्षेप विद्यमान हैं। कोटदिजी के निक्षेप संभवतः ई.पू. तीसरी शताब्दी के प्रथमार्द्ध के प्रतीत होते हैं। कोटदिजी के मृदभाण्ड की कुछ विशेषताएं सैंधव सभ्यता तक अग्रसारित हो गई। इस स्थल पर भवनों का निर्माण मुख्यतः पाषाण-खण्डों से हुआ था।

अमरीः अमरी भी सिंधु-पूर्व सभ्यता का एक अंग है। इस स्थल पर सिंधु-पूर्व सभ्यता स्तर की किलेबंदी नहीं है। अमरी की एक विलक्षण विशेषता यह है कि यहां पुरानी, सिंधु-पूर्व संस्कृति और परवर्ती सिंधु सभ्यता के बीच का संक्रमण काल परिलक्षित होता है। अमरी और कोटदिजी दोनों जगह विशिष्ट चित्रित मृदभाण्ड शैलियों के दर्शन होते हैं, जो सिंध तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्र में अनेक स्थलों पर पायी गयी हैं।

अलीमुरादः यह स्थल वर्तमान में पाकिस्तान के सिंध प्रांत में स्थित है। इस स्थल से कुआं, मृदभाण्ड, कार्नेलियन के मनके एवं पाषाणों से निर्मित एक विशाल दुर्ग का अवशेष प्राप्त हुआ है। अलीमुराद से बैल की मिट्टी की छोटी मूर्ति और कांस्य-निर्मित कुल्हाड़ी भी प्राप्त हुए हैं।

हड़प्पाः सैंधव सभ्यता का सर्वप्रथम खोजा गया नगर हड़प्पा ही था। इस सैंधव स्थल की खोज दयाराम साहनी के नेतृत्व में 1921 ई. में हुई। हड़प्पा के उत्खनन से सुनियोजित नगर निर्माण की जानकारी मिलती है। यहां के भवनों में पक्की एवं कच्ची दोनों प्रकार की ईंटों का प्रयोग किया गया है, परन्तु यहां की सड़कों में किसी भी प्रकार की ईंट का प्रयोग नहीं किया गया है। हड़प्पा से 16 मीटर लंबे और 6 मीटर चौडे छह धान्यागार प्राप्त हुए हैं और ये शृंखलाबद्ध हैं। इस स्थल से ताम्र एवं कांस्य उपकरण पाए गए हैं। यहां के निवासी सोना एवं चांदी का उपयोग भी करते थे। हड़प्पा के उत्खनन में चर्ट पत्थर के ब्लेड बहुतायत में मिले हैं। हड़प्पा से काले और लाल रंग के मृदभाण्ड प्राप्त हुए हैं। हडप्पावासी मातृदेवी एवं पशुपति की पूजा करते थे। इसके अतिरिक्त विभिन्न रीति-रिवाजों में भी इनकी आस्था थी।

वर्तमान में हड़प्पा पाकिस्तान में मांटुगुमरी जिले में स्थित है। यहां एक टीले के परकोटे से नीचे के तल के 20'' गहरे निक्षेप से ठीकरे उपलब्ध हुए हैं। यहां पर निर्मित दुर्ग 460 x 215 गज समानांतर चतुर्भुज आकार का है। भीतरी इमारत भूमितल से 20' से 25' ऊपर कच्ची मिट्टी की ईंटों पर निर्मित है। इसके चारों ओर रक्षात्मक किलेबंदी की गई है। दुर्ग के साथ बाद में बुर्ज व पुश्त भी जोडे गए थे। उत्तर-पशिचम की दिशा में प्रवेश-द्वार बने हुए हैं। यहां के चबूतरों पर निर्मित आवासी इमारतों की योजना बहुत स्पष्ट नहीं है। एक अन्य टीले से दो पंक्तियों में बने श्रमिकों के आवास

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

मिले हैं। पक्की ईंटों के बने गेहूं कूटने के चबूतरे जले हुए गेहूं के अवशेषों के साथ मिले हैं। हड़प्पा की कुछ शव समाधियां साधारण नागरिकों की हैं। विस्तारित शवाधानों के साथ बर्तन आदि भी प्राप्त हुए हैं। शवों का सिर सामान्यतः उत्तर की ओर है। हड़प्पा में एक शवाधान के गड्ढे के चारों ओर कच्ची ईंटों की चिनाई है और एक अन्य शवाधान से प्राप्त शव मेसोपोटामिया के दाह-संस्कार की पद्धति को दर्शाता है। हड़प्पा में एक स्थल से लंबी हड्डियों के साथ पूर्ण व खंडित खोपडियों का ढेर मिला है। धौलावीरा के उत्खनन के पूर्व तक ऐसा माना जाता था कि हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो सैंधव सभ्यता की दो राजधानियां थीं। विद्वानों द्वारा यह कहा जाता है कि ऋग्वेद में उल्लिखित 'हरियूपिया' हड़प्पा ही है।

मोहनजोदड़ो: सिंधु घाटी की सभ्यता का सर्वाधिक प्रमुख नगर था मोहनजोदड़ो। इसकी खोज राखालदास बनर्जी के नेतृत्व में 1921-22 ई. में हुई। मोहनजोदड़ो में भवन-निर्माण के छह सतह मिले हैं। सैंधव सभ्यता के अन्य स्थलों की अपेक्षा मोहनजोदड़ो में पक्की ईंटों का प्रयोग अधिक हुआ है। मोहनजोदड़ो का सर्वाधिक उल्लेखनीय स्मारक विशाल स्नानागार है। यह स्नानागार 12 मीटर लंबा, 7 मीटर चौड़ा तथा 3 मीटर गहरा था। इस स्थल से 27 धान्यकोठार भी मिले हैं। मोहनजोदड़ो में समान माप-तौल के बटखरे, विभिन्न मुहर एवं सूत्री वस्त्र के प्रमाण मिले हैं। हाथी दांत की कर्मशाला भी यहां प्राप्त हुई है। मोहनजोदड़ो में ही एक मुहर पर पशुपति शिव की आकृति मिली है। यहीं पर दाढ़ी वाले योगी की आकृति वाली मूर्ति भी प्राप्त हुई है। नृत्य करती बालिका की कांस्य प्रतिमा भी प्राप्त हुई है। मोहनजोदड़ो में ही एक ही जगह 16 मानवों के अस्थि-पंजर प्राप्त हुए हैं।

मोहनजोदड़ो आधुनिक पाकिस्तान के सिंध प्रांत में लरकाना जिले में सिंधु नदी के पूर्वी तट पर अवस्थित है। मोहनजोदड़ो का शाब्दिक अर्थ होता है 'मृतकों का टीला'। यह हड़प्पा की तरह ही एक टीला है। यहां के दुर्ग का चबूतरा 43" चौड़े कच्ची ईंटों के बांध से सुदृढ किया गया है। चबूतरे के तल के साथ एक पक्की ईंटों की बड़ी नाली बनायी गयी थी। निर्माण विधि तथा नगर नियोजन की विधि से यह आभास मिलता है कि यहां पर बाढ़ आने का खतरा रहता था और यहां के निवासी बाढ़ से बचने का उपाय करते थे। यहां पर नगर की रक्षा व्यवस्था विशेष रूप में की गई थी। मुख्य मार्गों का जाल, शहर को भवनों के 6 या 7 खण्डों में विभाजित करता है। यहां से फलाकार ईंटों से निर्मित मिट्टी से पुते हुए वृत्ताकार गर्त्तों में धातु कर्मीय मल के अवशेष मिले हैं। मोहनजोदड़ो से 87' x 64.5' आकार का विशाल साफ-सुथरे फर्शवाला भवन भी मिला है। इस भवन के एक कमरे ‍ं पंचमुखी गर्त्त बना हुआ है। यहां से प्राप्त एक अन्य भवन की दीवारें 2' x 40' हैं और 4' मोटी है। इसी के समीप एक दाढ़ीवाले आदमी की ी हुई मूर्ति मिली है। मूर्ति के आकार-प्रकार को देखते हुए इसे पुरोहित ा जाता है और इसी कारण पास वाले भवन को मंदिर या उपासना भवन या गया है। मोहनजोदड़ो से अस्थि-कलश के साथ कोयला और राख टकर शवाधान प्राप्त हुए हैं, परंतु शव समाधियां या कब्रें नियमित रूप ीं मिल सकी हैं। मोहनजोदड़ो से एक मुहर व ठीकरे पर रेखांकित शेष प्रकार के जहाज के चित्र की भी प्राप्ति हुई है। इससे जलमार्गीय त का आभास मिलता है। ऊंट, गधे व घोड़े स्थलीय यातायात में में लाए जाते थे। एच.टी. लैम्ब्रिक के अनुसार मोहनजोदड़ो की ा 35,000 थी। मोहनजोदड़ो में चाक निर्मित मृदभाण्ड ही ज्यादातर मृदभाण्डों में अधिकांशतः सामान्य हैं, किन्तु कुछ मृदभाण्डों में लाल में काले रंग से अलंकरण किया गया है। मोहनजोदड़ो में ही एक है, जिस पर पशुपति शिव का उत्कीर्णन है। मोहनजोदड़ो से ‍ के जौ तथा गेहूं के प्रमाण मिले हैं। अनाज का आटा बनाने बट्टे का प्रयोग होता था। जले हुए मटर, खरबूजे के बीज, तिल े बीज भी मिले हैं। सूती कपडे और सन के रेशे से निर्मित ाशेष भी प्राप्त हुए हैं।

लोथल सैंधव सभ्यता का प्रमुख व्यापारिक नगर था। 1954 62 ई. तक इस स्थल का उत्खनन कार्य एस.आर. राव के नेतृत्व में हुआ। लोथल की नगर निर्माण योजना हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की योजना से पृथक है। लोथल से 219 मीटर लंबी, 37 मीटर चौड़ी और 4.5 मीटर ऊंची एक गोदी प्राप्त हुई है। लोथल से प्राप्त मृण्मूर्तियों पर जहाजों की आकृति मिली है। यहां से खाड़ी देशों की मुहरें एवं ताम्र-सिल्लियां भी मिली हैं। इस स्थल से एक ही कब्र में पुरुष तथा महिला के दफनाए जाने के प्रमाण मिले हैं। लोथल में चावल की खेती के प्रमाण भी मिले हैं।

लोथल के प्रारंभ की प्रथम अवस्था से सैन्य सभ्यता की प्रौढ़ावस्था तथा द्वितीय अवस्था से उत्तर हड़प्पा सभ्यता की समानता है। यहां के नगर निर्माण की योजना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। लोथल 6 खण्डों में विभक्त था। प्रत्येक खण्ड कच्ची ईंटों के एक विस्तृत चबूतरे पर बना था, जो कि एक दूसरे से 12' से 20' की चौड़ाई वाले मार्ग से जुड़े हुए थे। कुछ भवनों में बरामदे बने थे, तो कुछ में केवल प्रांगण। एक विशाल भवन में जल-निकास की विस्तृत व्यवस्था थी तथा इसकी अलग से दीवार थी। यहां से पकी-मिट्टी के केक, गेंद और जली मिट्टी के साथ 4' x 4' आकार की कुछ संरचनाएं भी मिली हैं। कभी-कभी इनके साथ बड़ा चित्रित जार भी रखा होता था। दोनों ओर धुएं की कालिख से पुता एक चम्मच भी मिला है। एक कच्ची ईंटों की इमारत मिली है, जिसके 12 खण्ड हैं और प्रत्येक खण्ड 12' वर्ग का है। लोथल से 180°, 90°, 45° कोणों की माप के लिए उपयोग में लाया जाने वाला सीप का उपकरण प्राप्त होता है। इस उपकरण से दिशासूचक कम्पास का आभास मिलता है। 1.7 मिलीमीटर के भागों में विभाजित हाथी दांत का पैमाना और साहुल गोलक भी मिले हैं। यहां से ताम्र-कांस्य उपकरणों में एक दर्पण, सूई, मत्स्य कांटा, छेनी, बरमा, उत्कृष्ट आरी के खण्डित टुकड़े आदि मिले हैं।

चन्हूदड़ो: सिंध प्रांत में अवस्थित जिन स्थलों का महत्त्व सैंधव सभ्यता के परिप्रेक्ष्य में है, उनमें से एक प्रमुख स्थल है चन्हूदड़ो। इस स्थल की खोज 1931 ई. में एन.जी. मजूमदार ने की थी। विभिन्न प्रकार के कारखाना के लिए इस स्थल का विशिष्ट महत्त्व है। यहां पर मुहरों, गुड़ियों एवं हड्डियों की वस्तुओं का निर्माण होता था। चन्हूदड़ो से अलंकृत हाथी एवं कुत्ते द्वारा बिल्ली का पीछा करते हुए पद-चिह्न प्राप्त हुए हैं।

रोपड़: सैंधव सभ्यता के अंतर्गत यह एक स्थल है, जहां से सैंधव पूर्व एवं सैंधव सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इस स्थल की खोज यज्ञदत्त शर्मा ने 1953-56 ई. के बीच की। रोपड़ के भवनों में मुख्य रूप से पाषाण-खण्डों तथा मिट्टी का ही उपयोग हुआ था। इस स्थल के उत्खनन से जो महत्वपूर्ण वस्तुएं प्राप्त हुई हैं, उनमें प्रमुख हैं--मृदभाण्ड, आभूषण, चर्ट, फलक एवं तांबे की कुल्हाडियां।

रंगपुर: इस सैंधव स्थल का उत्खनन 1953-54 ई. में रंगनाथ राव के नेतृत्व में हुआ। सैंधव सभ्यता का गुजरात में लोथल के बाद यह दूसरा महत्त्वपूर्ण स्थल है। यहां के उत्खनन से प्राप्त वस्तुओं में सर्वाधिक प्रमुख है धान की भूसी। इसके अतिरिक्त यहां से कच्ची ईंटों के दुर्ग, नालियां, बाट, पत्थर के फलक आदि भी प्राप्त हुए हैं।

बनवाली: हरियाणा के हिसार जिले में अवस्थित इस सैंधव सभ्यता कालीन स्थल की खोज 1973-74 ई. में रविन्द्र सिंह बिष्ट ने की। इस स्थल के उत्खनन के दौरान दो महत्त्वपूर्ण स्तर प्राप्त हुए--सिंधु पूर्व सभ्यताकालीन और सिंधु सभ्यताकालीन। बनवाली के उत्खनन में उन्नत किस्म के जौ प्राप्त हुए हैं। बनवाली से प्राप्त होने वाली कुछ प्रमुख वस्तुएं हैं--मृदभाण्ड, मनके, मनुष्यों एवं पशुओं की मूर्तियां, चर्ट के फलक, गोलिया, कार्नेलियन के मनके, तांबे के बाणाग्र, हल की आकृति के खिलौने आदि।

सुरकोतडा: गुजरात के कच्छ जिले में स्थित इस सैंधव स्थल की खोज 1964 ई. में जगपति जोशी ने की थी। विभिन्न सैंधव स्थलों में सुरकोतडा का महत्त्व अश्व (घोडा) की अस्थियों का अवशेष प्राप्त होने के कारण है। इस स्थल से एक विशिष्ट कब्रगाह भी प्राप्त हुआ है। सुरकोतडा सैंधव सभ्यता के पतन के चिह्नों को प्रदर्शित करता है। यहां से एक कब्र बड़ी चट्टान से टिकी मिली है, जो सैंधव सभ्यता के संबंध में अभूतपूर्व है।

सुतकागेंडोर: दक्षिणी बलूचिस्तान में स्थित इस स्थल की खोज 1927

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

प्रमुख सैंधव-स्थल और सम्बद्ध नदी/सागर तट

स्थल	नदी/सागर तट
हड़प्पा	रावी नदी
मोहनजोदड़ो	सिंधु नदी
चन्हूदड़ो	सिंधु नदी
कोटदिजी	सिंधु नदी
रोपड़	सतलज नदी
कालीबंगा	घग्घर नदी
लोथल	भोगवा नदी
सुरकोतडा	दाश्क नदी
धौलावीरा	अरब सागर
बालाकोट	अरब सागर
आलमगीरपुर	हिण्डन नदी
रंगपुर	माबर नदी

प्रमुख सैंधव स्थल : खोजकर्त्ता एवं सम्बद्ध वर्ष

स्थल	खोजकर्त्ता	वर्ष
हड़प्पा	दयाराम साहनी	1921
मोहनजोदड़ो	राखाल दास बनर्जी	1922
सुतकागेंडोर	ऑरेल स्टीन	1927
चन्हूदड़ो	एन.जी. मजूमदार	1931
रंगपुर	ब्रजवासी लाल, माधो स्वरूप वत्स, रंगनाथ राव	1931-1953
रोपड़	यज्ञदत्त शर्मा	1953
कोटदिजी	फजल अहमद	1953
लोथल	रंगनाथ राव	1954
आलमगीरपुर	यज्ञदत्त शर्मा	1958
कालीबंगा	ब्रजवासी लाल	1961
सुरकोतडा	जगपति जोशी	1967
बनवाली	रविन्द्र सिंह विष्ट	1973

ई. में आरेल स्टीन ने की थी। सुतकागेंडोर से सैंधव सभ्यता की विकसित अवस्था के अवशेष उपलब्ध हुए हैं। लोथल की भांति ही यह भी एक बंदरगाह नगर था। इस स्थल से उत्खनन के दौरान प्राप्त प्रमुख वस्तुएं हैं--तांबे की कुल्हाड़ी, मिट्टी की चूड़ियां, मृदभाण्ड एवं राख से भरा बर्तन।

धौलावीराः 80 के दशक तक प्रायः ऐसा माना जाता था कि सैंधव सभ्यता के प्रायः सभी स्थल दो टीलों में विभाजित थे और एक में उच्च वर्ग तथा दूसरे में निम्न वर्ग निवास करते थे, परन्तु 90 के दशक में एक ऐसे स्थल की विस्तृत जानकारी प्राप्त हुई जिसने इस धारणा को मिथक साबित कर दिया कि सैंधव सभ्यता के स्थल में दो ही टीले होते थे। वर्ष 1990-91 में भारत के पश्चिमी भाग में स्थित गुजरात राज्य में धौलावीरा नामक एक स्थल की विस्तृत खुदाई की गई और वहां से त्रिस्तरीय टीले का अवशेष प्राप्त हुआ। उसकी खुदाई के पूर्व मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा को सर्वाधिक विकसित एवं समृद्ध नगर माना जाता था, परन्तु धौलावीरा की खुदाई के दौरान कुछ ऐसे अवशेष प्राप्त हुए हैं जो यह प्रमाणित करते हैं कि सैंधव सभ्यता के अब तक ज्ञात सभी स्थलों में धौलावीरा ही सर्वाधिक समृद्ध नगर था।

धौलावीरा के टीलों की खोज डा. जे.पी. जोशी ने सर्वप्रथम की थी जो भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के अधिकारी थे, जबकि इसके उत्खनन का कार्य विस्तृत तौर पर भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के ही एक अन्य अधिकारी डा. आर.एस. बिष्ट के मार्गदर्शन में 1990-91 में किया गया। उत्खनन के दौरान पाए गए स्थल तीन भागों में विभाजित थे, जिनमें दो आयताकार थे। धौलावीरा में प्राप्त स्थलों से यह पहली बार देखने को मिला कि हड़प्पाकालीन नगर में 'किला' या 'नगर-दुर्ग' तथा 'निचले नगर' के अतिरिक्त एक अन्य टीला भी था। इस अजनबी तीसरे स्थल के बारे में यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि इसका उपयोग प्रशासनिक अधिकारियों के आवास के तौर पर किया जाता रहा होगा। ध्यातव्य है कि यह स्थल (मध्यमा) सिर्फ धौलावीरा में ही पाया गया है। धौलावीरा की हड़प्पाकालीन अन्य नगरों से समकालीनता का प्रमाण यह है कि यहां प्राप्त लिखित अभिलेखों में प्रयुक्त लिपि हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, कालीबंगा तथा लोथल से प्राप्त लिपियों के जैसी ही है। यहां प्राप्त लिपियों की विशेषता यह है कि वर्णों का आकार बहुत बड़ा है। प्रत्येक वर्ण लगभग 37 से.मी. लंबा और 27 से.मी. चौड़ा है। उनमें से नौ वर्ण एक क्रम में पाए गए हैं। पुरातत्त्वविदों के अनुसार धौलावीरा से प्राप्त वर्णों के आकार असाधारण हैं। धौलावीरा के संबंध में एक और उल्लेखनीय बात यह है कि यहां से सुरक्षा-गृह का प्रमाण प्राप्त हुआ है।

देसलपुरः देसलपुर गुजरात के कच्छ क्षेत्र में भादर नदी के किनारे स्थित है। इसकी खुदाई सर्वप्रथम पी.पी. पाण्ड्या और एम.ए. ढाके के नेतृत्व में की गई। लेकिन बाद में 1964 ई. में के.वी. सौन्दरराजन के नेतृत्व में भी यहां उत्खनन करवाया गया था। यहां से एक सुरक्षा प्राचीर मिली है। इसमें स्थान-स्थान पर बुर्ज बने हुए हैं। महत्वपूर्ण अवशेषों में मिट्टी तथा जेस्पर के बाट, गाड़ियों के पहिए, तांबे की छरियां, छेनी, अंगूठी तथा सेलखड़ी और तांबे की कुछ मुहरें भी हैं।

हुलासः यह स्थल उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिले में स्थित है। यहां की गई खुदाई से संस्कृति के विभिन्न चरणों का पता चलता है। यहां से प्राप्त कुछ मृदभाण्ड अन्य स्थलों से प्राप्त हुए सैन्धव भाण्डों से मिलते-जुलते हैं। कांचली मिट्टी के मनके, चूड़ियां, ठीकरे, खिलौना-गाड़ी आदि मिलते हैं। सैन्धव लिपि युक्त एक ठप्पा भी यहां से प्राप्त हुआ है।

बालाकोटः यह स्थान कराची से 88 किमी की दूरी पर बलूचिस्तान के दक्षिणी तटवर्ती पट्टी पर स्थित है। यह स्थल सैन्धव काल में बन्दरगाह था। इस स्थल का उत्खनन कार्य 1979-81 के बीच जार्ज एफ. डेल्स के नेतृत्व में करवाया गया। यहां से प्राक् सैन्धव तथा विकसित सैन्धव सभ्यता दोनों के अवशेष मिलते हैं। इसकी नगर योजना सुनियोजित थी। भवन कच्ची ईंटों से बनाए जाते थे जबकि नालियों के लिए पकी हुई ईंटों का प्रयोग मिलता है। बालाकोट सीप-उद्योग (Shell Industry) के लिए प्रसिद्ध था। इसके अतिरिक्त भाले, बाणाग्र, तांबे, कांसे, मिट्टी आदि के ठीकरे तथा सेलखड़ी की महरें खुदाई से मिली हैं।

माण्डाः जम्मू से लगभग 28 किमी की दूरी पर चेनाब नदी के दक्षिणी किनारे पर स्थित यह विकसित हड़प्पा संस्कृति का सबसे उत्तरी स्थल है। 1982 में जे.पी. जोशी तथा मधुबाला ने इसका उत्खनन करवाया था। यहां किए गए उत्खनन से संस्कृति का त्रिस्तरीय क्रम-प्राक सैन्धव, विकसित सैन्धव एवं उत्तरकालीन सैन्धव प्राप्त हुआ है।

भगवानपुराः हरियाणा के कुरुक्षेत्र जिले में सरस्वती नदी के किनारे पर स्थित इस स्थल से सैन्धव सभ्यता के पतनोन्मुख काल के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इस स्थल का उत्खनन जे.पी. जोशी के नेतृत्व में करवाया गया था। यहां से प्राप्त प्रमुख अवशेषों में सफेद, काले तथा आसमानी रंग की कांच की चूड़ियां, तांबे की चूड़ियां, कांच की मिट्टी के चित्रित मनके आदि हैं।

राखीगढ़ीः राखीगढ़ी हरियाणा में जिंद के पास स्थित है। इस स्थल की खोज सूरजभान ने की। राखीगढ़ी सैन्धव सभ्यता का सबसे बड़ा और विस्तृत स्थल है। यहां से तांबे के उपकरण तथा सैन्धव लिपि में अंकित एक मुहर मिली है।

कुन्तासीः यह स्थल गुजरात के राजकोट जिले में स्थित है। इस स्थल का उत्खनन एम.के. धावलिकर, एम.आर. रावल तथा वाई.एम. चीतलवाल के नेतृत्व में करवाया गया। यहां से विकसित तथा उत्तरकालीन सैन्धव संस्कृति के स्तर प्रकाश में आए हैं। यहां के अवशेषों से संकेत मिलता है कि यहां बन्दरगाह, व्यापार केंद्र, निगरानी स्तंभ तथा सुविधाएं थीं। खुदाई में सैन्धव मृदभाड-जैसे लम्बी सुराहियां, दोहत्थे कटोरे, मिट्टी की खिलौना गाड़ी, कांचली मिट्टी तथा सेलखड़ी के मनके आदि मिले हैं।

रोजदीः गुजरात के सौराष्ट्र जिले में स्थित इस स्थल की खुदाई लाल, काले और चमकदार मृदभांडों के अवशेष मिले हैं। बस्ती के चारों

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

बड़े-बड़े पत्थरों की सुरक्षा दीवार मिली है। हाथी के अवशेष भी मिलते हैं। यहां से प्राप्त अवशेषों में प्राक् सैन्धव, सैन्धव तथा उत्तरकालीन सैन्धव संस्कृति के स्तर उद्घाटित होते हैं।

अल्लाहदीनो: यह स्थल सिन्धु तथा अरब सागर के संगम स्थल से 16 किमी. उत्तर-पूर्व तथा पाकिस्तान के कराची से 40 किमी पूर्व में स्थित है। 1982 में फेयर सर्विस ने यहां के टीले का उत्खनन करवाया था। सुनियोजित नगर योजना के साथ-साथ यहां से बड़ी संख्या में कलात्मक अवशेष प्राप्त हुए हैं। यहां के भवन वर्गाकार अथवा आयताकार हैं तथा कई खण्डों में निर्मित हैं।

दीवारों की नींव तथा नालियां पत्थरों से बनी हैं। मिट्टी से बनी एक खिलौना-गाड़ी भी मिली है। संभवतः यह एक बन्दरगाह नगर था।

दैमाबादः यह स्थल महाराष्ट्र के अहमदनगर जिले में प्रवरा नदी के किनारे स्थित है। इस स्थल की खुदाई से सैन्धव सभ्यता के कुछ साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। इनमें कुछ मृद्भाण्ड, सैन्धव लिपि की एक मुहर प्याले, तश्तरी आदि हैं। यहां से सैन्धव प्रकार का एक मानव-शवाधान भी मिलता है। दैमाबाद सैन्धव सभ्यता का सबसे दक्षिणी स्थल है।

सैंधव सभ्यता और वैदिक सभ्यता में अंतर

सैंधव सभ्यता और वैदिक सभ्यता में रीति-रिवाजों, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि व्यवस्थाओं में पर्याप्त अंतर दृष्टिगोचर होते हैं। इन दोनों सभ्यताओं के बीच दृष्टिगोचर होने वाले कुछ प्रमुख अंतर इस प्रकार हैं--

- सैंधव सभ्यता एक नगरीय सभ्यता थी और इनकी आजीविका का आधार मुख्यतः वाणिज्य-व्यवसाय था, जबकि वैदिक सभ्यता एक ग्रामीण सभ्यता थी और इनकी आजीविका का आधार मुख्य रूप से कृषि ही था।
- धातुओं के उपयोग के आधार पर भी इन दोनों सभ्यताओं में पर्याप्त भिन्नता थी। सैंधव सभ्यता के निवासी पाषाण तथा कांस्य उपकरण का उपयोग करते थे। इन्हें लौह धातु की जानकारी नहीं थी, जबकि वैदिक-जनों को लोहे की जानकारी थी।
- सैंधव सभ्यता के निवासी मुख्य रूप से मातृदेवी, शिव, लिंग विभिन्न प्रकार के वृक्षों आदि की पूजा करते थे। विभिन्न प्रकार के पुरातात्त्विक स्रोतों से यह प्रमाणित होता है कि सैंधव लोग मूर्ति-पूजा में विश्वास रखते थे। दूसरी ओर, वैदिक आर्य मूर्ति-पूजा तथा लिंग-पूजा के विरोधी थे और इंद्र, अग्नि, वरूण आदि इनके प्रमुख आराध्य देव थे।
- सैंधव सभ्यता के लोग वृषभ को पवित्र एवं पूज्य मानते थे, जबकि वैदिक आर्य गाय को।
- सिंधु सभ्यता के निवासी बाघ और हाथी से परिचित थे अश्व से नहीं, जबकि वैदिक आर्य अश्व से परिचित थे बाघ और हाथी से नहीं। यद्यपि कुछ ऐसे प्रमाण मिले हैं, जिनसे यह ज्ञात होता है कि सैंधव सभ्यता के लोग अश्व से भी परिचित थे।
- सैंधव सभ्यता में लिपि का विकास हो गया था। अब तक 400 चित्राक्षर प्राप्त किए जा चुके हैं। परन्तु, वैदिक सभ्यता में लिपि का विकास नहीं हुआ था। इस सभ्यता में शिक्षा श्रुति परंपरा पर ही आधारित थी।

सैंधव सभ्यता की उत्पत्ति से संबद्ध विचार

- सर जॉन मार्शल, गार्डन चाइल्ड, मार्टीमर ह्वीलर आदि पुरातत्त्ववेत्ताओं की यह मान्यता है कि सिंधु सभ्यता का विकास मेसोपोटामिया की सुमेरियन सभ्यता से अभिप्रेरित है। इन पुरातत्त्ववेत्ताओं के अनुसार, सुमेर की सभ्यता अपेक्षाकृत प्राचीन थी और सैंधव सभ्यता और सुमेरी सभ्यता के समान थी। इनके अनुसार, सैंधव सभ्यता और सुमेरी सभ्यता नगरीय सभ्यताएं हैं, दोनों के निवासी कांस्य तथा ताम्र के साथ-साथ पाषाणों के लघु उपकरणों का उपयोग करते थे; दोनों ही सभ्यताओं में भवनों का निर्माण कच्ची तथा पक्की ईंटों के प्रयोग से हुआ है; दोनों सभ्यता के लोगों चाक पर मृत्तिका-पात्र का निर्माण करते थे और दोनों सभ्यता के लोगों को लिपि का ज्ञान था। परन्तु, गहराई से विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि इन विद्वानों का यह विचार तथ्य-रहित है।
- प्रोफेसर टी.एन. रामचन्द्रन, डॉ. लक्ष्मण स्वरूप, के.एन. शास्त्री, पुसालकर, एस.आर. राव, राखालदास बनर्जी आदि विद्वान वैदिक आर्यों को ही सैंधव सभ्यता का निर्माता मानते हैं।
- सुनीति कुमार चटर्जी ने भाषा विज्ञान के आधार पर यह सिद्ध किया है कि ऋग्वेद में अनार्य के रूप में जिन दास-दस्युओं का उल्लेख हुआ है, वे द्रविड़ भाषी थे और सैंधव सभ्यता के निर्माता भी द्रविड भाषी ही थे। मूलतः, ये द्रविड़ भाषी दास और दस्यु ही सैंधव सभ्यता के निर्माता थे।
- स्टुअर्ट पिग्गट, ऑल्चिन, फेयरसर्विस, जे.एफ. देल्स आदि पुरातत्त्ववेत्ताओं की मान्यता यह है कि सैंधव सभ्यता की उत्पत्ति दक्षिणी अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, सिंध तथा पंजाब (पाकिस्तान) और उत्तरी राजस्थान (भारत) के क्षेत्रों में पूर्व में विकसित ताम्र-पाषाणिक संस्कृतियों-- मुण्डीगाक, मोरासी घुंडई, जॉब, क्वेटा, कुल्ली, नाल, अमरी, कोटदिजी, हड़प्पा तथा कालीबंगा से ही हुई।

पुनरीक्षण अभ्यास

प्रश्न	उत्तर
1. किस स्थल के प्राक्-हड़प्पा अवस्था से कूंड (हलरेखा) का पता चलता है?	1. कालीबंगा
2. हड़प्पाई लोग किससे बने हल का प्रयोग करते थे?	2. लकड़ी के
3. कपास को यूनान के लोग किस नाम से पुकारते थे?	3. सिंडन
4. मेसोपोटामियाई अभिलेखों में सिंधु क्षेत्र का प्राचीन नाम क्या पाया जाता है?	4. मेलुहा
5. मेसोपोटामिया के पुरालेखों में किन दो मध्यवर्ती व्यापार-केंद्रों का उल्लेख मिलता है?	5. दिलमुन और माकन
6. हड़प्पा संस्कृति के लगभग सभी मकान किस आकार में पाए गए हैं?	6. आयताकार
7. ऐसा कौन-सा स्थल है जहां से उत्तर हड़प्पाई अवस्था में पकाई हुई ईंटों के प्रमाण मिले हैं?	7. भगवानपुरा
8. चावल के उत्पादन के साक्ष्य कहां से प्राप्त होते हैं?	8. रंगपुर एवं लोथल
9. एकमात्र हड़प्पाकालीन स्थल जो त्रि-स्तरीय था:	9. धौलावीरा
10. हड़प्पाकाल की ज्यादातर मुहरें किस प्रकार की होती थीं?	10. वर्गाकार
11. किन सैंधव स्थलों से यज्ञीय वेदियां प्राप्त होती हैं?	11. लोथल एवं कालीबंगा
12. सैंधव सभ्यता के किस स्थल से घोड़े के दांतों के पाये जाने का प्रमाण मिलता है?	12. राणाधुन्डई
13. सैंधव सभ्यता के किस स्थल से घोड़े की हड्डियों के प्रमाण मिलते हैं?	13. सुरकोटडा
14. सैंधव स्थलों में किस जगह पर सर्वप्रथम कृषि के साक्ष्य उपलब्ध होते हैं?	14. मेहरगढ़
15. सैंधव संस्कृति के अंतर्गत प्रायः सभी मकान पीछे की गली में खुलते थे परन्तु इसका एक अपवाद कौन-सा स्थल है?	15. लोथल
16. किस स्थल पर फर्श के निमित्त अलंकृत ईंटों का प्रयोग किया गया था?	16. कालीबंगा

WWW.GRADESETTER.COM